वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७
ISSN 2582-0656
9 772582 065005
विवेक ज्योति
वर्ष ५९ अंक ४ अप्रैल २०२१
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०२१; चैत्र, सम्वत् २०७८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ४

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

ISSN 2582-0656

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी के मन्दिर के पृष्ठभाग के दिवार पर भगवान श्रीरामचन्द्र, सीता माता और श्रीलक्ष्मण जी की निर्मित प्रस्तर मूर्ति को आवरण पृष्ठ में दर्शाया गया है। श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी की स्थापना ४ जुलाई, १९०२ ई. को श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने की थीं। इस मन्दिर की स्थापना २४ फरवरी, १९३६ ई. को श्रीरामकृष्ण के ही एक अन्य अन्तरंग शिष्य स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज ने की थीं।

अप्रैल माह के जयन्ती और त्यौहार

२१ रामनवमी

२५ महावीर जयन्ती

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
कु. मालती एस. रत्नापारखी, अमरावती (महा.)	२,०००/-
श्री संजीव गुलाटी, टैगोर गार्डन, न्यू दिल्ली	१,००८/-
श्री प्रभु लाल बी. चौहान, भंडारा (महा.)	१,०००/-
श्री एस.के. राय, प्रगति नगर भोपाल (म.प्र.)	१,१००/-
श्री सारंग उबाले, मीरा रोड, पूर्वी थाणे (महा.)	१,००१/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६४७. श्री रितेश पाठक, हरनी, वडोडरा (गुजरात)	प्राचार्य, विद्यानिकेतन माध्यमिक विद्यालय, कुशलगढ़, बासवाड़ा (राजस्थान)
६४८. श्री महेन्द्र सिंह, एचपीसीएल, जिंद (हरयाणा)	लाईब्रेरी, शासकीय हायर सेकेंडरी स्कूल, सलानी, जांजगीर-चांपा (छत्तीसगढ़)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959**

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ | अप्रैल २०२१ | अंक ४

श्रीराम-स्तुतिः

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

– नील-कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्रीसीताजी जिनके वाम-भाग में विराजमान हैं और जिनके हाथों में अमोघ बाण और सुन्दर धनुष हैं, उन रघुवंश के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्-
तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा।।

– रघुकुल को आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी के मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेक से न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुख से मलीन हुई, उस मुख-कमल की छवि मेरे लिये सदा सुन्दर मंगलों को देनेवाली हो।

उद्भवस्थितिसंसारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

– उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली, क्लेश हरनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याण करनेवाली श्रीरामचन्द्रजी की प्रियतमा श्रीसीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

पुरखों की थाती

पूजयेद् अशनं नित्यं अद्यात्-च-एतद्-अकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः।।७२०।।

– मनुष्य को जो भी भोज्य पदार्थ मिले, उसे सम्मान की दृष्टि से देखते तथा उसकी निन्दा न करते हुए भोजन करे। उसे देखकर सभी तरह से हर्ष तथा सन्तोष का अनुभव करते हुए उसकी प्रशंसा करे। (मनु)

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यम्-उद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेद्-अवमानस्य सर्वदा।।७२१।।

– साधक या ब्राह्मण को चाहिये कि वह सर्वदा सम्मान से विष के समान दूर रहे और अपमान की अमृत के समान सर्वदा आकांक्षा करता रहे। (मनु)

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि
भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति।
अन्नं प्रयन्त्यभि-संविशन्तीति।।७२२।।

– अन्न को ब्रह्म जानो, (क्योंकि) ये सभी प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते है, जन्म लेने के बाद अन्न से ही जीवित रहते हैं और मरने के बाद अन्तत: अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। (उपनिषद्)

सम्पादकीय

मम हृदय बसहु श्रीराम

श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज लिखते हैं –

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ।
बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ।।
राम धाम पथ पाइहि सोई।
जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई।।[१]

– आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्रीराम के परम धाम के उस मार्ग को पा जायेगा, जिस मार्ग को कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं।

यहीं से हमें वह सूत्र मिलता है, जो हमें भगवद्भक्ति से जोड़ता है और हमारे चित्त की क्रियाओं को दर्शाता है। जब हम दिन में भगवान का चिन्तन करेंगे, तभी तो वे स्वप्न में आएँगे। जब हम जगे रहते हैं, तो जप-ध्यानादि को छोड़कर जो भी काम करते हैं, वह लगभग हमारे शरीर के बाह्यरूप में ही होता है, जो किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान से जुड़ा होता है। यहाँ तक कि हम जब किसी कार्य की योजना बनाते हैं, तो उस योजना की कल्पना भी शरीर के बाहर ही होती है। हम जो दिनभर करते-सोचते हैं, वही रात में हमारे स्वप्न में आता है। कुछ विशेष स्वप्न भी होते हैं, जिसकी चर्चा मैं यहाँ नहीं कर रहा। सामान्यत: स्वप्न दिन में देखे, सुने, सोचे हुए के ही आते हैं। स्वप्न में भी हम बाहर ही कार्य करते रहते हैं। क्या कोई व्यक्ति ऐसा स्वप्न देखता है कि वह बैठकर अपने हृदय में ध्यान कर रहा है और भगवान उसके हृदय में विराजमान हैं। यदि कोई इस प्रकार का स्वप्न देखता है, तो वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है। उसी महाभाग्यशाली की बात गोस्वामीजी ने कही है।

अब जिज्ञासा होती है कि भगवान के हृदय में ही बसने की बात क्यों कही गयी? कह सकते थे कि स्वप्न में कोई किसी मन्दिर में, किसी तीर्थ में या कहीं भी लक्ष्मण, सीता-राम का दर्शन कर ले, तो उसे परम धाम मिलेगा। लेकिन उन्होंने हृदय में बसने की बात कही है। यद्यपि भगवान सर्वव्यापी हैं। उनका निवास सर्वत्र है, फिर भी यहाँ हृदय में बसने की बात गोस्वामीजी ने कही।

भगवान श्रीराम पिताजी की आज्ञा से १४ वर्ष के लिये वन-गमन करते हैं और वाल्मीकिजी से पूछते हैं कि प्रभो ! वह स्थान बताईये, जहाँ मैं सुन्दर पत्तों और घास की कुटी बनाकर लक्ष्मण और सीता सहित 'कुछ समय' निवास करूँ। गोस्वामीजी लिखते हैं –

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ।
सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ।।
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला।
बासु करौं कछु काल कृपाला।।[२]

वाल्मीकिजी उन्हें लम्बी सूची प्रदान करते हैं, जो यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत है। वे कहते हैं, आप लक्ष्मण-सीता सहित वहाँ निवास कीजिए – जो आपकी कथा श्रवण करते हैं, जो नेत्र आपके दर्शन के लिये चातक जैसे हों, जो आपके रूप-सौन्दर्य के सम्मुख अन्य रूप की इच्छा नहीं करते, जो आपके निर्मल यश का गायन करते हैं, जो आपकी प्रसादी भोजन-वस्त्र ही ग्रहण करते हैं, जो देव, गुरु, ब्राह्मण को श्रद्धा से प्रणाम करते हैं, जो अपने हाथों से आपके चरणों की पूजा करते हैं और आप पर विश्वास करते हैं, जो तीर्थ-दर्शन करते हैं और आपका नाम-जप करते हैं, जो यज्ञ-दान करते और आपसे भी अधिक गुरु-सेवा करते हैं और सब साधनाओं का फल श्रीरामचन्द्र के चरणों में प्रीति हो, यही फल माँगते है, आप उनके मन-मन्दिर में वास कीजिये। आगे कहते हैं –

काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया।

तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।[३]

– जिनमें कामादि षट्-शत्रु, राग-द्वेष, कपट, दम्भ और माया नहीं है, आप उनके हृदय में निवास कीजिए।

जो सर्वप्रिय, सर्वहितैषी, सुख-दुख, निन्दा-स्तुति में सम, जो विचार कर सत्य-प्रिय बोलते हैं और सदा आपकी अनन्य शरण हैं, जो परस्त्री को जन्मदात्री माता, परधन को विष समझते हैं, जो परसम्पत्ति देख सुखी और परदुख से दुखी होते हैं, जिनके आप ही स्वामी, सखा, माता-पिता-गुरु सब कुछ हैं, हे रामजी ! आप अनुज, सीता समेत उनके मन-मन्दिर में निवास कीजिए।

जो गुणग्राही और अवगुण-त्यागी हैं, बिप्र, धेनु हित कष्ट सहते हैं, जो नीति-निपुणवान् हैं, जो अपने गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जो आप पर ही विश्वास करता है, जो आपका भक्त है, जो जाति-पाति, धन-धर्म, मान, परिवार, सदन सब कुछ छोड़कर आपको हृदय में धारण करता है – '**सब तजि तुम्हरि रहहि उर लाई**', आप उसके हृदय में रहिए।

जिसके लिए स्वर्ग-नरक-मोक्ष समान है, क्योंकि वह सर्वत्र आपको ही देखता है, जो मन-कर्म-वाणी से आपका दास है, उसके उर में निवास कीजिए। अन्त में कहते हैं –

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।

बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु।।[४]

जो निराकांक्षी है और आपसे स्वभावत: प्रेम करता है, आप उसके मन में निरन्तर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है। इस प्रकार वाल्मीकिजी ने भगवान को मानव के सुन्दर मन-मन्दिर में निरन्तर रहने का स्थान बताया और कुछ समय के लिये चित्रकूट में रहने को कहा।

ध्यातव्य है कि ऋषि ने चित्रकूट में भगवान को कुछ काल के लिये रहने को कहा और उपरोक्त शुद्ध लोगों के मन-मन्दिर में निरन्तर वास करने को कहा। अध्यात्म-रामायण में भी वाल्मीकिजी कह रहे हैं –

तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियत मन्दिरम्।।

शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टृणां च जन्तुषु।

त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम्।।[५]

– 'हे रघुश्रेष्ठ ! आपका जो निश्चित गृह है, उसे बताता हूँ। जो शान्त, समदर्शी और सम्पूर्ण जीवों के प्रति द्वेषहीन हैं तथा अहर्निश आपका ही भजन करते हैं, उनका हृदय आपका प्रधान निवास-स्थान है।'

निरन्तराभ्यासदृढ़ीकृतात्मनां

त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम्।

त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां

सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे।।[६]

– 'निरन्तर अभ्यास से जिनका चित्त निर्मल हो गया है, जो सर्वदा आपकी सेवा में लगे रहते हैं तथा आपके नाम संकीर्तन से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, उनके हृदय-कमल में सीतासहित आपका निवास-गृह है।' यहाँ भी निष्कलुष भक्त के हृदय में भगवान का वास बताया गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के दशवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अपनी विभूतियों को बताते हुए कहते हैं – हे अर्जुन मैं सभी प्राणियों की आत्मा, उनका आदि-मध्य और अन्त हूँ। मैं विष्णु, सूर्य, शशि, मरीचि, सामवेद, इन्द्र, मन, प्राणियों की चेतनाशक्ति, शंकर, कुबेर, अग्नि, मेरु गिरि, वृहस्पति, स्कन्द, समुद्र, भृगु, ओम्, जपयज्ञ, हिमालय, पीपल, नारद मुनि, चित्ररथ, कपिल मुनि, उच्चै:श्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, नृप, वज्र, कामधेनु, कामदेव, वासुकी, शेषनाग, वरुण, अर्यमा, यमराज, प्रह्लाद, काल, सिंह, गरुड़, शस्त्रधारी श्रीराम, मगर, नदी, सृष्टि का आदि-अन्त, विद्याओं में अध्यात्मविद्या, अकार, अक्षय, महाकाल, मृत्यु, कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा, बृहत्साम वेद, गायत्री छन्द, मार्गशीर्ष, वसन्त ऋतु, तेज, विजय, निश्चय, सत्त्वभाव, वासुदेव, धनंजय, वेद-व्यास, शुक्राचार्य कवि, दण्ड, नीति, मौन, तत्त्वज्ञान और सभी प्राणियों की उत्पत्ति का कारण हूँ। अन्त

में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि सभी ऐश्वर्यशाली, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तुएँ मेरे ही तेज के अंश की अभिव्यक्ति हैं।

यहाँ भगवान कहते हैं कि ये सब मैं स्वयं हूँ, तो किसी के भी दर्शन से काम हो जाता। किन्तु वाल्मीकिजी ने भगवान को शुद्ध मन-मन्दिर और निष्पाप हृदय में रहने का स्थान बताया और गोस्वामीजी ने स्वप्न में भी हृदय में दर्शन करने की बात कही।

जब तक हमें केवल बाहर दर्शन होता रहेगा, तब तक हमें भवचक्र से मुक्ति नहीं मिलेगी। केवल बाहर के प्रकाश से अन्धकारमय कक्ष में खोई हुई सूई नहीं मिलेगी। यदि सूई चाहिए, तो कक्ष में भी दीप जलाना होगा, तब उस प्रकाश में हम उसे देख सकेंगे। जैसे कमरे में दीप लाने से अन्धकार चला जाता है, प्रकाश हो जाता है, ठीक वैसे ही हमारे हृदय में घोर अन्धकार है, काम-क्रोधादि रावण-कंस से भी अधिक घातक शत्रु हैं, इनका विनाश केवल अपने पुरुषार्थ से नहीं होता, पुरुषार्थ के साथ प्रभु के अनुग्रहपूर्वक पधारकर कृपा करने से होता है। विश्वामित्र मुनि जैसा पुरुषार्थी और शस्त्रास्त्र में निपुण तपस्वी ऋषि भी दानवों का वध करने में सफल नहीं हो सके, तब चिन्तित होकर सोचने लगते हैं –

गाधितनय मन चिंता ब्यापी।
हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।[७]

तब वे अयोध्या से भगवान को बुलाकर लाते हैं और भगवान ताड़का और दानवों का वध करते हैं। रावण, बालि का वध भगवान ने जाकर किया। कंस का वध भगवान ने जाकर किया। इस प्रकार हम भी भगवान को अपने हृदय में आने के लिये प्रार्थना करें, उनके आने से सभी शत्रुओं और कल्मषों का नाश हो जायेगा। रावण-वध के बाद देवराज इन्द्र भी वहाँ आकर प्रार्थना करते हैं –

वैदेही अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत।।[८]

हे प्रभु ! वैदेही, लक्ष्मणसहित मेरे हृदय को अपना भवन बनाइए। उसके बाद भगवान शिवजी आकर कहते हैं, हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये। काम-क्रोध-मद रूपी हाथियों के लिये सिंह के समान आप इस सेवक के मनरूपी वन में निरन्तर वास कीजिये। आप हमारे भय को दूर कीजिये, हमें इस दुस्तर भवसागर से पार कीजिये। हे शरणागतों के रक्षक ! आप मेरे हृदय में निवास कीजिए –

बसहु राम नृप मम उर अंतर।[९]

इस लोकगीत में भी भक्त आर्त्तप्रार्थना करता है –

प्रभु आ जाईं हमरा अटरिया में, हिया के कोन्हरिया में ना।
एइमें ना बा ढेर स्थान, बाटे भरल बड़ा समान।
भरल काम-क्रोध-लोभ के बजरिया में, हिया...
जबले राउर चरन ना आई, तबले सतरू सब ना जाई।।
विषय काँटा भरल बाटे ए डगरिया में।।
हिया के कोन्हरिया में ना ...

– भक्त कहता है, प्रभु पहले मेरे भवन में, उसके बाद मेरे कामादि-विषय-कंटकपूर्ण हृदय में आ जाइये। बिना आपके आए ये शत्रु नहीं जाएँगे, भेद-भाव नहीं जायेगा और तब तक शान्ति, भक्ति और भवचक्र-मुक्ति नहीं मिलेगी। आइये! हम सभी प्रभु को अपने हृदय में विराजमान करने के लिये श्रद्धा-भक्ति और आर्त्त भाव से पुकारें –

हे परम ब्रह्म हे परम धाम, हे भक्तों के सुखधाम।
लखन सीता मातु सहित मम हृदय बसहु श्रीराम।।

OOO

सन्दर्भसूत्र – १. श्रीरामचरितमानस, २/१२३/१-२, **२.** वही, २/१२५/५-६, **३.** वही, २/१२९/१-२, **४.** वही, २/१३१, **५.** अध्यात्मरामायण, २/६/५४, **६.** वही, २/६/६३, **७.** श्रीरामचरितमानस, १/२०५/५, **८.** वही, ६/११२/६, **९.** वही, ६/११४ ख/छं. ४-५.

भक्ति का विकास करने का मार्ग है : – मेरे भक्तों का संग और मेरे भक्तों की सदा सेवा, एकादशी का व्रत, मुझसे सम्बन्धित पर्वों को मनाना, मेरी गाथा का श्रवण, अध्ययन और प्रवचन, एकनिष्ठ भक्ति से मेरी सतत पूजा तथा मेरी लीला का गायन, इन नियमों का यदि कोई प्रतिदिन पालन करे, तो उसे शुद्धा भक्ति की प्राप्ति होगी।

यह जानो कि यदि मेरे नाम का जप एकाग्र भक्ति और मेरे प्रति पूर्ण शरणागति के भाव से किया जाय, तो वह इस संसार के सभी पापों को नष्ट कर देता है।

इस बात का महत्त्व नहीं है कि तुम पुरुष हो या स्त्री; तुम्हारी जाति, नाम और यश पर ध्यान नहीं दिया जाता। तुम जीवन के किसी भी आश्रम में हो सकते हो। मेरी पूजा करने के लिए भक्ति ही आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति में मेरे प्रति भक्ति नहीं है, तो उसके लिए त्याग, तपस्या, परोपकार या वेद-पाठ अथवा यज्ञकर्मों के बल पर मुझे देख पाना असम्भव है। – श्रीरामचन्द्र

भक्तियोग

स्वामी विवेकानन्द

(अमेरिका के न्यूयार्क नगर में २० जनवरी, १८९६ को प्रात:काल स्वामीजी ने 'भक्तियोग' विषय पर एक कक्षा ली थी। इसे उनके अंग्रेज शिष्य श्री जे.जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। इसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

पिछली कक्षा में हमने प्रतीकों पर चर्चा पूरी कर ली। गौड़ी भक्ति पर हम एक और विचार लेते हैं और उसके बाद हम परा या सर्वोच्च भक्ति की ओर उन्मुख होंगे। इस विचार को 'निष्ठा' कहते हैं।

हम जानते हैं कि पूजा-उपासना विषयक ये सभी विचार सही और उत्तम हैं और हमने देखा कि ईश्वर और एकमात्र ईश्वर की पूजा-उपासना को ही भक्ति कहते हैं। उनके अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना 'भक्ति' नहीं है। परन्तु ईश्वर की विभिन्न रूपों तथा विभिन्न भावों के द्वारा उपासना की जा सकती है। हमने देखा कि ये सभी भाव सही तथा अच्छे हैं; परन्तु इसमें कठिनाई यह है कि यदि हम इस अन्तिम निष्कर्ष पर ही ठहर जायँ, तो हम अन्तत: देखेंगे कि हमने अपनी शक्तियाँ व्यर्थ ही क्षय कर दी हैं और किया कुछ भी नहीं।

उदारवादी लोगों में यह प्रवृत्ति खूब प्रचलित है कि हर विषय का आधा-अधूरा ज्ञान प्राप्त कर लो और कुछ भी भलीभाँति जानने की जरूरत नहीं है – थोड़ा इधर मुँह मारो, और थोड़ा उधर और आगे चलकर पता चलता है कि उन्हें कुछ भी नहीं मिला। इस देश (अमेरिका) में अनेकों बार यह एक तरह की बीमारी का रूप धारण कर लेता है – सुनना बहुत कुछ, करना नहीं कुछ।

हमारे एक प्राचीन भक्त की सलाह है ''सभी फूलों से मधु ग्रहण करो। सबके साथ सम्मानपूर्वक मिलो, सबसे सहमति दिखाओ, परन्तु अपना भाव मत छोड़ो।'' अपने भाव को न छोड़ना ही 'निष्ठा' है। किसी अन्य लोगों के आदर्श से घृणा करना या उनकी निन्दा करना भी उचित नहीं है। भक्त जानता है कि वे सभी सत्य हैं। परन्तु इसके साथ ही उसे अपने आदर्श को बड़ी दृढ़ता के साथ पकड़े रहना होगा।

श्रीराम के महान् भक्त हनुमानजी की कथा आती है। जैसे ईसाई लोग ईश्वर के अवतार के रूप में ईसा की पूजा करते हैं, वैसे ही हिन्दू लोग भी ईश्वर के अनेक अवतारों की पूजा करते हैं। उनके मतानुसार भारत में ईश्वर ने अनेकों बार अवतार लिये और एक बार वे पुन: आयेंगे। जब उन्होंने राम के रूप में अवतार लिया, उस समय हनुमानजी उनके महान उपासक के रूप में आये थे। वे एक महान् योगी थे और दीर्घ काल तक जीवित रहे।

श्रीराम ने एक बार फिर श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया। हनुमानजी एक महान् योगी थे, अत: उन्हें पता था कि भगवान एक बार फिर श्रीकृष्ण के रूप में आये हैं। वे उनसे मिलने आये, उनकी सेवा की, परन्तु बोले, ''मैं आपका वही राम-रूप देखने का इच्छुक हूँ।'' श्रीकृष्ण बोले, ''यह रूप क्या यथेष्ट नहीं है? मैं ही कृष्ण हूँ और मैं ही राम हूँ, सारे रूप मेरे ही हैं।'' हनुमान ने कहा, ''मैं जानता हूँ, तथापि मुझे तो राम-रूप ही चाहिये। जानकीजी के पति और श्री (लक्ष्मीजी या राधाजी) के पति, दोनों एक हैं। जद्यपि दोनों एक ही परमात्मा के अवतार हैं, तथापि कमल-लोचन श्रीराम ही मेरे सर्वस्व हैं।'' इसी को निष्ठा कहते हैं, सभी तरह की उपासनाओं को सत्य मानते हुए भी, अन्य उपासनाओं को छोड़कर अपनी उपासना में दृढ़ रहना। हमें दूसरों की बिल्कुल भी उपासना नहीं करनी है; तथापि हमें उन सभी के प्रति द्वेष या निन्दा का भाव नहीं, अपितु सम्मान का भाव रखना होगा।

हाथी के मुख के दाँत निकले रहते हैं। ये केवल खाने के लिए नहीं, केवल दिखाने के लिए होते हैं, परन्तु उसके मुख के भीतर जो दाँत हैं, उन्हीं से वह अपना भोजन चबाता है। अत: सबसे हेल-मेल रखो, सबको हाँ जी, हाँ जी करते रहो, परन्तु दूसरों के भाव मत अपनाओ। अपनी पूजा-उपासना के भाव को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो। जब तुम पूजा करते हो, तो तुम्हें ईश्वर के अपने आदर्श अर्थात् अपने इष्ट-देवता की पूजा करनी होगी अन्यथा तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा, तुम्हारी उन्नति नहीं होगी।

जब कोई पौधा बड़ा हो रहा हो, तो उसके चारों ओर

बाड़े का घेरा लगाना आवश्यक है। अन्यथा कोई भी पशु उसे चट कर जाएगा। परन्तु जब वह एक सबल तथा विशाल वृक्ष में परिणत हो जाय, तब तुम उसके बाड़े की परवाह मत करो, क्योंकि वह अपने आप में परिपूर्ण है। अत: जब आध्यात्मिकता का अंकुर बड़ा हो रहा हो, तो उसकी शक्तियों को विभिन्न प्रकार के धार्मिक विचारों में बिखरा नहीं डालना चाहिए। थोड़ा-सा यह भाव और थोड़ा-सा वह भाव; थोड़ा-सा ईसाई और थोड़ा-सा बौद्ध भाव और गम्भीरतापूर्वक कुछ भी न लेना, इससे आध्यात्मिक हानि होती है।

इस (सर्व-भाव-स्वीकृति) का एक भला पक्ष भी है; परन्तु हम वहाँ अन्त में पहुँचेंगे। केवल हमें गाड़ी के पीछे घोड़े जोतने से बचना चाहिए।

प्रारम्भ में हम एक सम्प्रदाय का आश्रय लेने को बाध्य हैं। परन्तु सम्प्रदायवाद का आदर्श यह होना चाहिए – किसी को उससे वंचित न किया जाय। हममें से प्रत्येक का एक अपना सम्प्रदाय हो और वह सम्प्रदाय हमारा अपना इष्ट हो, हमारा अपना चयनित मार्ग हो। वैसे, इससे हमें अन्य लोगों का वध करने की नहीं, अपितु केवल अपने निर्धारित मार्ग को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहने की प्रेरणा प्राप्त हो। हमारे लिए यह पवित्र है, परन्तु हमें इसे अपने अन्य सम्प्रदाय के भाइयों को बताने की जरूरत नहीं, क्योंकि जैसे मेरा चुनाव पवित्र है, वैसे ही उसका भी। अत: इस चुनाव को अपने तक ही सीमित रखो। हर व्यक्ति का पूजा-उपासना के विषय में यही दृष्टिकोण होना चाहिए। जब तुम अपने चुने हुए आदर्श, अपने इष्ट देवता से प्रार्थना करते हो, तब वही तुम्हारे लिए ईश्वर का एकमात्र रूप है। नि:सन्देह ईश्वर के अनेक पहलू विद्यमान हैं, परन्तु अभी तुम्हारे लिए तुम्हारे इष्ट ही उनके एकमात्र रूप हैं।

तदुपरान्त इस इष्ट-देवता के माध्यम से दीर्घ काल तक साधना करने के बाद जब तुम्हारी आध्यात्मिकता का पौधा बड़ा हो जाय, अन्तरात्मा सबल हो जाय और तुम्हें यह बोध होने लगे कि तुम्हारे इष्ट सर्वत्र विद्यमान हैं, तब स्वाभाविक रूप से ही ये सारे बन्धन छूट जाएँगे। फल जब पक जाता है, तो अपने ही भार से गिर जाता है। यदि तुम कच्चा फल तोड़ो, तो वह कड़वा या खट्टा मिलेगा। अत: हमें इसी भाव में विकसित होना पड़ेगा।

केवल व्याख्यान तथा इसी तरह की विभिन्न बातें सुन-सुनकर अपने मस्तिष्क में कुरुक्षेत्र का युद्ध पैदा करके केवल अधपचे विचारों के साथ पड़े रहने से कोई लाभ नहीं है। जिन लोगों में किसी एक भाव के प्रति निष्ठा है, वे आध्यात्मिक हो जाएँगे, आलोक दर्शन पाएँगे। हर कोई यह शिकायत करता हुआ दिखता है, मैंने ऐसा प्रयास किया, मैंने वैसा प्रयास किया; परन्तु यदि तुम पलटकर उनसे पूछो कि उन्होंने कैसा प्रयास किया, तो वे कहेंगे कि उन्होंने एक स्थान पर कुछ व्याख्यान सुने हैं और इधर-उधर कुछ चर्चाएँ भी सुनी हैं। इसके बाद उन्होंने तदनुसार तीन घण्टे अथवा कई दिनों तक पूजा-उपासना किया और समझ लिया कि इतना ही काफी है। यह पूर्णता या आध्यात्मिकता का मार्ग नहीं, अपितु मूर्खतापूर्ण कार्य है।

एक भाव को पकड़ो, अपने इष्ट को पकड़ो और अपना पूरा मन-प्राण उन्हीं में लगा दो। तब तक दिन-पर-दिन इसी का अभ्यास करते रहो, जब तक कि तुम्हें इसका फल न दिखायी दे, जब तक तुम्हारी अन्तरात्मा का विकास न हो जाय। यदि तुम्हारा भाव सच्चा तथा भला है, तो वह भाव बढ़ते हुए क्रमश: सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आवृत कर लेगा। इसे अपने आप विकसित होने दो; यह सब कुछ अपने भीतर से ही बाहर की ओर विकसित होगा। और तब तुम कह सकोगे कि तुम्हारे इष्ट ही सर्वत्र और सब के भीतर विद्यमान हैं।

यह भी सत्य है कि इसके साथ ही हमें सर्वदा याद रखना होगा कि हम अन्य लोगों के इष्ट देवताओं अर्थात् ईश्वर के अन्य भावों को भी स्वीकार करना और उन्हें सम्मान देना होगा। ऐसा न होने पर हमारी पूजा-उपासना अध:पतित होकर धर्मान्धता में परिणत हो जाएगी। एक व्यक्ति की एक प्राचीन कथा है, जो शिव का उपासक था। हमारे देश में कुछ ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो ईश्वर की शिव के रूप में उपासना करते हैं और कुछ सम्प्रदाय उनकी विष्णु के रूप में। यह व्यक्ति शिवजी का महान् भक्त था और साथ ही विष्णु के भक्तों से घोर द्वेष रखता था; यहाँ तक कि वह विष्णु का नाम तक नहीं सुनना चाहता था। भारत में विष्णु के असंख्य उपासक हैं, अत: विष्णु का नाम उसके कानों में आ ही जाता था। इससे परेशान होकर उसने अपने दोनों कानों में छेद करा लिये और उनमें छोटी-छोटी घण्टियाँ बाँध लीं। जब भी कोई व्यक्ति विष्णु के नाम का उच्चारण करता, तो वह अपना सिर हिलाकर घण्टियाँ बजाने लगता, जिससे वह विष्णु का नाम सुनने से बच जाता।

परन्तु भगवान शिव ने उसे स्वप्न देकर बताया, ''तुम कितने बड़े मूर्ख हो ! मैं ही विष्णु हूँ और मैं ही शिव भी हूँ; ये दोनों केवल नाम मात्र के लिये ही अलग हैं। ये दोनों अलग-अलग ईश्वर नहीं हैं।''

वह बोला, ''मुझे इसकी कोई परवाह नहीं, परन्तु मुझे विष्णु से कुछ भी लेना-देना नहीं है।'' उसके पास शिवजी की एक छोटी मूर्ति थी, जो बड़ी सुन्दर थी और उसने एक वेदी बनवाकर उसी पर उसकी स्थापना कर ली थी। एक दिन उसने कुछ उच्चकोटि की अगरबत्तियाँ खरीदीं और उनमें से कुछ को जलाकर अपने इष्टदेवता को अर्पित करने लगा। उसकी अगरबत्तियों में से धुँआ उठकर हवा में फैलने लगा। उसने देखा कि उसकी मूर्ति के दो हिस्से हो गये हैं – उसका आधे भाग में शिव का रूप था और बाकी आधे में विष्णु का। यह देखने के बाद वह व्यक्ति उछलकर वेदी पर चढ़ गया और विष्णु के नाक में अपनी उंगली घुसा दी, ताकि अगरबत्ती की सुगन्ध का कण मात्र भी उसमें न जा सके।

धीरे-धीरे वह व्यक्ति एक राक्षस बन गया और शिवजी उससे तंग आ गये। घण्टाकर्ण राक्षस के नाम से वह सभी कट्टर धर्मान्धों का आदिपुरुष माना जाता है। भारत के बच्चे उसका बड़ा सम्मान और उसकी पूजा करते हैं। वह एक बड़े विचित्र प्रकार की पूजा होती है। वे उसकी मिट्टी की एक मूर्ति बना लेते हैं और हर तरह के भयंकर दुर्गन्धवाले फूलों से उसकी पूजा करते हैं। भारत के जंगलों में कुछ ऐसे भी फूल होते हैं, जिनका दुर्गन्ध बड़ा उग्र होता है। वे उन्हीं के द्वारा उसकी मूर्ति की पूजा करते हैं और बड़ी-बड़ी लाठियों से उसे पीटते हैं। जो लोग अपने इष्ट-देवता के अतिरिक्त ईश्वर के अन्य सभी रूपों से घृणा करते हैं, उन समस्त धर्मान्धों का वह आदिपुरुष माना जाता है।

निष्ठा भक्ति के साथ यही एक खतरा है – धर्मान्ध राक्षस बन जाने का। संसार ऐसे लोगों से भरा रहता है। घृणा करना बहुत ही आसान है। सामान्य लोग इतने दुर्बल हो जाते हैं कि किसी एक वस्तु से प्रेम करने हेतु उनके लिए दूसरी वस्तु से घृणा करना आवश्यक हो जाता है; उन्हें अपनी ऊर्जा को एक स्थान पर लगाने के लिए उसे दूसरे स्थान से बाहर निकालना होगा। एक पुरुष एक स्त्री से प्रेम करता है और बाद में उसका दूसरी से प्रेम हो जाता है। अब उसे दूसरी से प्रेम करने के लिए पहली से घृणा करना होगा। ऐसा ही महिलाओं के सन्दर्भ में भी है। यह विशेषता हमारे स्वभाव के प्रत्येक अंग में है और इस कारण हमारे धर्म में भी मनुष्य जाति का साधारण अविकसित दुर्बल मस्तिष्क एक से घृणा किये बिना दूसरे से प्रेम नहीं कर सकता। धर्म के क्षेत्र में यही विशेषता धर्मान्धता का रूप धारण कर लेती है। उनके लिए अपने आदर्श से प्रेम करने का एकमात्र तात्पर्य होता है – प्रत्येक भिन्न विचार से घृणा करना।

व्यक्ति को ऐसी मनोवृत्ति त्याग देनी चाहिए और साथ ही एक अन्य खतरे से भी बचना चाहिए। हम अपनी सारी शक्तियों को व्याख्यानों के श्रवण में नष्ट न कर डालें। (ऐसी स्थिति में) धर्म हमारे लिए निष्फल हो जाता है। यही दो खतरे हैं। उदारवादी लोगों के लिए खतरा यह है कि वे अपनी ऊर्जा को बिखरा डालते हैं और उनमें तीव्रता नहीं होती। आजकल तुम देखते हो कि धर्म में बड़ा ही फैलाव तथा बिखराव आ गया है। परन्तु अब विचार इतने व्यापक हो गये हैं कि उनमें कोई गहरायी नहीं रही। बहुत से लोगों के लिए धर्म थोड़ा-बहुत दान-पुण्य करने का एक साधन मात्र बन गया है। दिनभर के परिश्रम के बाद जी-बहलाव का साधन बन गया है, मन-बहलाव के लिए वे लोग पाँच मिनट का धर्म भी कर लेते हैं। उदारवादी विचारधारा में यही खतरा है। दूसरी ओर सम्प्रदायवादियों में गहरायी और तीव्रता दीख पड़ती है, परन्तु उनकी तीव्रता अति-संकीर्ण होती है। वे लोग बड़े गहरे होते हैं, परन्तु उनमें कोई प्रसार या विस्तार नहीं होता। केवल इतना ही नहीं अपितु यह उनके मन में भिन्न मतावलम्बी के लिए घृणा भी उत्पन्न करता है।

यदि हम लोग इन खतरों से बचते हुए चरम उदारवादियों के समान व्यापक हो जायँ और साथ ही घोर कट्टरपन्थियों के समान गहरे बन जायँ, तो हमारी समस्या का समाधान हो जायेगा। अब उसे कार्यरूप में कैसे परिणत किया जा सकता है। निष्ठा के इस सिद्धान्त द्वारा यह जानकर कि हमें दिखने वाले सभी आदर्श उत्तम तथा सत्य हैं, ये सभी एक ही ईश्वर के विभिन्न अंग हैं और साथ ही यह सोचकर कि हममें ईश्वर को उनके इन सभी रूपों में पूजा-उपासना करने के लिए यथेष्ट शक्ति नहीं है, अत: हमें केवल एक भाव को पकड़ना होगा और उसी को अपने जीवन का आदर्श बनाना होगा। जब तुम ऐसा करने में सफल हो जाओगे, तो बाकी सब कुछ अपने आप चला आयेगा। भक्ति का औपचारिक, आनुष्ठानिक तथा पहला भाग यहीं समाप्त होता है। **(क्रमश:)**

रामराज्य का स्वरूप (२/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय
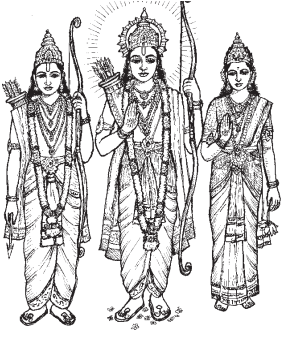
(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)
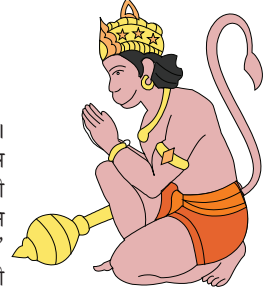
अब अगर आप ऐसे देखें, तो हनुमानजी का उत्तर बड़ा अटपटा है, पर यदि आप विचार करके देखें, तो हनुमानजी के ये उत्तर साधारण हैं क्या? हनुमानजी जब यह कहते हैं कि मैं भूखा था, तो फल खा लिया। इस सम्बन्ध में मुझे श्रीमद्भागवत का एक श्लोक स्मरण आता है। एक व्यक्ति भूखा है। वह भूखा होने के कारण चोरी करता है, तो भले ही उसकी चोरी को अपराध मानकर उसे दण्ड दिया जाय, पर अगर उसकी जिम्मेदारी दूसरों के ऊपर है, तो उसके भूखे होने का जिम्मेदार कौन है? श्रीमद्भागवत में बड़ा विलक्षण श्लोक आता है। उसमें चोर की एक नई परिभाषा की गई। उस श्लोक में कहा गया कि जो आवश्यकता पूर्ति के लिए चोरी करता है, वह तो चोर है ही, लेकिन सबसे बड़ा चोर कौन है? सबसे बड़ा चोर वह है, जो अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह कर दूसरे भूखे को चोरी करने पर विवश करता है। कहा गया – **यावद् भ्रीयेत जठरं तावत् सत्त्वं हि देहिनाम्**। जितने में व्यक्ति का पेट भर जाय, उसकी आवश्यकता की पूर्ति हो जाय, उतने पर ही व्यक्ति का अधिकार है। बड़ी अनोखी बात है। क्या? बाहर एक व्यक्ति भूखा पड़ा हुआ है, नगर में एक व्यक्ति भूखा पड़ा हुआ है और आप अपनी आवश्यकता से अधिक भोजन ही नहीं कर रहे हैं, न जाने कितना भोजन नष्ट कर रहे हैं, न जाने कितने भोजन का दुरुपयोग कर रहे हैं। तो इन दोनों का एक-दूसरे से सम्बन्ध नहीं है क्या? क्या आपने अधिक संग्रह करके, अपनी तृप्ति के लिये अधिक भोजन करके सामनेवाले व्यक्ति को भूखे रहने के लिये विवश नहीं किया? श्रीमद्भागवत में कहा गया – **अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनतो** – उससे अधिक को जो अपना मानता है, वह चोरी करता है।

अब वही प्रश्न आया, एक व्यक्ति चोरी करता है, आवश्यकता के कारण इसको ऐसा तर्क न मान लिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति यही दुहराने लगे, वह सर्वदा केवल यही कहता रहे कि यह मेरा अधिकार है। आजकल यह भी एक परम्परा बन गई है। पर इसका अभिप्राय है कि यह तो दूसरे पक्ष की सोचने की बात है। एक व्यक्ति अगर भूखा रह गया, उसको जो भूखा बनाए रखा है, वह भी तो उसमें एक कारण है। तो हनुमानजी का तात्पर्य था कि जब मैं लंका में आया, तो जो मिले, सब खानेवाले ही मिले, खिलानेवाला तो कोई मिला नहीं, मैं तो भूखा था, ऐसी स्थिति में मैं क्या करता? हनुमानजी से वहाँ जो भी मिलता, वह खानेवाला ही मिलता है, सुरसा खाने की चेष्टा करती है, सिंहिका खाने की चेष्टा करती है, लंकिनी खाने की चेष्टा करती है। हनुमानजी का तात्पर्य यह था कि रावण, अगर मैं तुम्हारे नगर में, तुम्हारे राष्ट्र में आकर भी भूखा रह गया, तो इसका अर्थ है कि तुम्हारे यहाँ दूसरों को खाकर भूख मिटाने की वृत्ति है, दूसरे के अभाव को दूर करने की, दूसरों की आवश्यकता को पूरी करने वृत्ति नहीं है, ऐसी स्थिति में अगर मैंने भूखे रहकर चोरी की, तो क्या इसमें तुम अपराधी नहीं हो?

दूसरी ओर हनुमानजी का रावण पर व्यंग्य भी था। क्या? अब चोरी का न्याय करने भी बैठे तो तुम्हीं बैठे। तुम सिंहासन पर हो और मैं नागपाश में जकड़ा हुआ तुम्हारे सामने खड़ा हुआ हूँ। तुम न्यायाधीश हो और मैं अपराधी हूँ। तुम कौन न्यायाधीश हो, जिसने स्वयं जनकनन्दिनी श्रीसीताजी को चुरा लिया है और वह चोर न्यायाधीश बनकर मुझ पर फल की चोरी का आरोप लगाकर मुझे दण्ड देने पर तुला हुआ है। तो क्या तुमने इस विरोधाभास पर कभी दृष्टि डाला? क्या इसीलिए कि तुम लंका के स्वामी हो, तुम्हारे पास शक्ति है, तुम्हारे पास सत्ता है और ये सारी वस्तुएँ हैं और इन वस्तुओं के कारण तुम यह मान बैठे हो

कि तुम्हारा अपराध अपराध नहीं है, तुम्हारी चोरी चोरी नहीं है और मेरी चोरी चोरी है।

यदि इस कथा के अन्तरंग में प्रवेश करें, जैसाकि श्रीभरत ने प्रवेश किया, तब हम समझ सकेंगे कि असली अपराधी कौन है कैकेयी या मन्थरा? भरतजी ने देखा कि कैकेयी को छोड़कर मन्थरा को दण्ड दिया जा रहा है। महारानी कैकेयी के ऊपर प्रहार करने का साहस शत्रुघ्नजी और श्रीभरतजी दोनों को नहीं है। मन्थरा दासी है, उसके पीछे कोई शक्ति नहीं है, तो यह दण्ड अपराधी को दिया जा रहा है कि निर्बल को दिया जा रहा है। इसलिए भरतजी ने कहा कि तुम मन्थरा को दण्ड मत दो, रोक दो।

श्रीभरत इससे भी आगे बढ़ गये। वे कहाँ पर आगे बढ़े? मान लीजिये श्रीभरत से अगर कोई पूछे कि मंथरा अगर दोषी नहीं है, तो कैकेयीजी दोषी हैं, तो कैकेयाजी को दण्ड मिलना चाहिए। श्रीभरत कहते हैं कि न न। उससे भी अधिक गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। क्या? मन्थरा ने अपने आप को दासी मानकर यह मान लिया कि कैकेयी के स्वार्थ की रक्षा करना उसका कर्तव्य है और महारानी कैकेयी ने जो कुछ किया, उसके मूल में महारानी कैकेयी नहीं हैं, मैं हूँ।

यही रामराज्य का चिन्तन है। इसका अभिप्राय है कि सामनेवाले की घटनाओं में आप सामनेवाले की भागीदारी को मत खोजिए, अपितु अपनी भागीदारी को खोजने की चेष्टा कीजिए। कहीं आपके किसी व्यवहार से, आपकी किसी चेष्टा से इस बुराई को कोई प्रोत्साहन तो नहीं मिला? कहीं कोई बुराई साकार रूप में परिणत तो नहीं हुई?

ऐसी स्थिति में श्रीभरत यह कहते हैं, रामायण में उनकी वह पंक्ति आती है, जिसमें कैकेयीजी को उन्होंने जो कठोर शब्दों में फटकारा है। उसके लिए भी आगे चलकर उन्होंने चित्रकूट में पश्चात्ताप किया। उनके मुख से जो वाक्य निकला, वह वाक्य आपने पढ़ा होगा। श्रीभरत ने कहा – प्रभु, मैं इतना लज्जित हूँ कि मैंने और अनर्थ तो किया ही किया, पर महारानी कैकेयी को बिना समझे बड़े कठोर वचन सुना दिया –

बिनु समुझें निज अघ परिपाकू।
जारिऊँ जायँ जननि कहि काकू।। २/२६०/६

मैंने कठोर व्यंग्य बाणों के द्वारा कैकेयी को इतनी पीड़ा पहुँचाने की चेष्टा की, किन्तु इसके मूल में तो मैं ही हूँ। क्यों? अगर कैकेयीजी को यह विश्वास होता कि भरत कभी भी इस प्रकार से राज्य स्वीकार नहीं करेंगे, तो कैकेयीजी इस प्रकार की भूल क्यों करतीं? क्यों इतना बड़ा अनर्थ करतीं? कैकेयीजी के मन में यह विश्वास रहा होगा, यह धारणा रही होगी कि भरत राज्य स्वीकार कर लेगा। उसका अर्थ यह हुआ कि बाल्यावास्था से जिस माँ ने मुझे अपनी गोद में खिलाया, उस माँ ने यह अनुभव किया होगा कि मुझमें लोभ-लालच है और तभी माँ के मन में यह धारणा बनी। ऐसी परिस्थिति में मेरे समान पापी दूसरा कौन है?

मोहि समान को पाप निवासू।
जेहि लगि सीय राम बनबासू।। २/१७८/३

यहीं पर कर्मसिद्धान्त के विस्तार की आवश्यकता है। व्यक्ति अपने ही कर्मों के परिणामों को नहीं भोग रहा है, अपितु एक व्यक्ति जो कर्म का परिणाम भोग रहा है, उसमें दूसरे व्यक्ति की भागीदारी है। श्रीभरत कहते हैं कि मैं ही समस्त पापों का निवास हूँ, क्योंकि मेरे लिये ही ये सारे अनर्थ हुए, यह चिन्तन जब आता है, तब रामराज्य की भूमिका बनती है। यह चिन्तन केवल भावनात्मक सत्य नहीं है। यद्यपि यह कसौटी अत्यन्त कठिन है और मनुष्य इसे पढ़कर आतंकित हुए बिना नहीं रहेगा। लेकिन इसमें क्या संदेह है कि अगर हम यह अनुभव कर सकें कि संसार में यदि कहीं द्वेष है, कहीं ईर्ष्या है, कहीं स्वार्थ है, कहीं चोरी की वृत्ति है, तो उसमें हम अपने कार्यों के द्वारा भागीदार हैं? तब दो बातें होंगी। एक तो हम केवल दूसरों को ही अपराधी मानकर उसको ही दण्डित करने या कराने की चेष्टा नहीं करेंगे, अपितु हम अपने विषय में भी चिन्तन करेंगे और यह प्रयत्न करेंगे कि हम जो दूसरों की बुराई में भागीदार हैं, उस भागीदारी से कैसे बचें?

नारदजी और भगवान के बीच बड़ा मीठा विवाद हो गया न ! नारदजी ने भगवान से कहा कि तुम दूसरों को कर्म का परिणाम देते हो, दूसरों को कर्म का फल देते हो, लेकिन तुम्हें भी तो तुम्हारे कर्मों का फल देनेवाला चाहिए। गोस्वामीजी लिखते हैं –

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई।
भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई।।
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू।
बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू।।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू।
अति असंक मन सदा उछाहू।।
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा।
अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा।। १/१३६/१-४

कहा जाता है कि ईश्वर कर्म-परिणाम से मुक्त है, कर्म-परिणाम से ऊपर है और जीव कर्म का परिणाम भोगने के लिए बाध्य है। देवर्षि नारद ने कहा कि दूसरे जीव ही कर्म का परिणाम क्यों भोगें?

भले भवन अब बायन दीन्हा।
पावहुगे फल आपन कीन्हा।। १/१३६/५

तुम भी तो अपने कर्म का फल भोगो। यद्यपि नारद को परास्त होना पड़ा। भगवान ने दुख के सन्दर्भ में एक नई दृष्टि दे दी। क्या? नारद ने कहा, तुमने मुझे दुःख दिया है, तो बदले में मैं भी तुम्हें दुख दूँगा। उन्होंने भगवान को कई शाप दिए। शाप देते हुए उन्होंने कहा –

मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी।
नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी।। १/१३६/८
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।
सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी।
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।। १/१३६/६-७

नारदजी ने कई शाप भगवान को दिए। उन्होंने कहा – तुमने मनुष्य बनकर मुझे ठगा है, तो तुम्हें मनुष्य के रूप में जन्म लेना पड़ेगा। तुमने मेरा विवाह नहीं होने दिया, तो तुम्हें भी अपनी पत्नी के वियोग में, विरह में रोना पड़ेगा। तुमने मुझे बन्दर की आकृति दी है, तो बन्दर तुम्हारी सहायता करेंगे।

नारदजी को लगा कि जब मैं इनके कर्म का इतना बड़ा परिणाम इनको दूँगा, तो ये सुनकर दुखी हो जाएँगे कि मैंने ऐसी भूल क्यों की? लेकिन भगवान ने जब नारद का शाप सुना तो क्या किया?

श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
१३७/०

भगवान ने नारदजी का शाप सिर पर चढ़ा लिया। इससे भगवान ने एक कला बताई। परिणाम देना भले ही किसी के हाथ में हो, पर उस कर्म के परिणाम को लेने की कला अगर आपके पास हो, जैसा कि भगवान ने किया, तो वह आपको दुख नहीं दे पायेगा।

नारदजी ने भगवान को कर्म के बदले में दुख देने के लिये प्रयत्न किया, पर भगवान ने कहा कि तुम अपनी समझ से दुख दे रहो हो, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि तुम जिसे दुख समझ रहे हो, उसे मैं भी दुख समझूँ। यह कर्म के परिणाम को ग्रहण करने की एक कला है। उसका अभिप्राय है कि कर्म का जो परिणाम होगा, वह तो वस्तु और क्रिया के रूप में होगा और वस्तु और क्रिया के रूप में जो कर्म का परिणाम होगा, उसका क्या अर्थ लिया जाय, इस विषय में व्यक्ति स्वतन्त्र है और यही स्वतन्त्रता भगवान ने दी है – 'श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।' जब भगवान नारदजी की स्तुति करने लगे और उनके शाप को सिर माथे पर चढ़ा लिया, तो नारद ने कहा कि इतने बड़े शाप को सुनकर भी मुस्कुरा रहे हैं। क्या आपको नहीं लग रहा है कि मैंने कैसा कठोर शाप दिया है? भगवान ने हँसकर कहा – मैं तो यह देखकर गद्‌गद् हो गया कि संतों का स्वभाव कैसा होता है ! तुम जैसे सन्त जो दुख देने की कला में इतने अनभिज्ञ हो कि चेष्टा करने पर भी दुख नहीं दे पाते, सुख ही दे डालते हैं। तुमने तो दुख के स्थान पर सुख दिया। **(क्रमशः)**

राम, सीता और लक्ष्मण वनवास के लिए निकले। आगे-आगे राम चले, बीच में सीता और पीछे-पीछे लक्ष्मण। राम का सदा पूर्ण दर्शन पाने के लिए लक्ष्मण व्याकुल थे, बीच में सीता के होने के कारण यह सम्भव न था। तब लक्ष्मण ने सीता से प्रार्थना की कि वे तनिक बाजू हट जाएँ; सीता के थोड़ा बाजू हटते ही लक्ष्मण की इच्छा पूरी हुई – उन्हें राम के दर्शन हुए। यही हाल ब्रह्म, माया और जीव का भी है। जब तक माया हट न जाए तब तक जीव ब्रह्म के दर्शन नहीं पा सकता।

माया ही ब्रह्म का स्वरूप प्रकट कर देती है। माया की कृपा हुए बिना ब्रह्म को कौन जान सकता है ! ईश्वर की शक्ति का ज्ञान हुए बिना ईश्वर का ज्ञान नहीं हो सकता।

– श्रीरामकृष्ण देव

श्रीमद्भागवत में रामकथा का प्रतिपादन

प्रो. बालकृष्ण कुमावत, उज्जैन

श्रीमद्भागवत भगवत्स्वरूप महापुरुष वेदव्यास जी की ऐसी रचना है, जिससे उन्हें शान्ति मिली। इसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधनज्ञान, सिद्धज्ञान, साधन-भक्ति, वैधीभक्ति, प्रेमाभक्ति, मर्यादा मार्ग, अनुग्रह मार्ग, द्वैत और अद्वैत और द्वैताद्वैत आदि सभी का परम रहस्य बड़ी ही मधुरता के साथ भरा हुआ है, जो सारे मतभेदों से ऊपर उठा हुआ अथवा सभी मतभेदों का समन्वय करनेवाला महान ग्रन्थ है, जिसकी महिमा वर्णनातीत है। इसके पारायण से लौकिक-पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। श्रीमद्भागवत के नवम् स्कन्ध के दसवें तथा एकादश अध्याय में भगवान् श्रीराम की लीलाओं का भी संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है। यह श्री शुकदेवजी एवं परीक्षित के बीच परस्पर संवाद के रूप में है।

भगवान् श्रीराम की लीलाओं के प्रसंग का प्रवर्तन करते हुए श्री शुकदेवजी कहते हैं – 'परीक्षित ! खट्वा के पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहु के परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघु के अज और अज के पुत्र महाराज दशरथ हुए। देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्री हरि ही अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे – राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। परीक्षित ! सीतापति भगवान् श्रीराम का चरित्र तो तत्त्वदर्शी ऋषियों ने बहुत कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार सुना भी है। भगवान् राम ने अपने पिता राजा दशरथ के सत्य की रक्षा के लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वन में विचरण करते रहे। उनके चरण-कमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजी के करकमलों का स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वन में चलते-चलते थक जाते, तब हनुमान और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखा को नाक-कान काटकर विरूप कर देने के कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजी का वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोग के कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्र तक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्र पर पुल बाँधा और लंका में जाकर दुष्ट राक्षसों के जंगल को दावाग्नि के समान दग्ध कर दिया। वे कोसल नरेश हमारी रक्षा करें।''

खट्वाङ्गाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्।।१।।
तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया।।२।।
तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः।।३।।
गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुःखलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः।।४।।

(भागवत/९/१०/१-४)

भगवान् श्रीराम ने विश्वामित्र के यज्ञ में लक्ष्मण के सामने ही मारीच आदि राक्षसों को मार डाला। जनकपुर में सीता-स्वयंवर में आये संसार के चुने हुए वीरों की सभा में भगवान् शंकर का वह भयंकर धनुष रखा था, जो इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाई से उसे स्वयंवर सभा में ला सके थे। भगवान् श्रीराम ने उस धनुष को बात-बात में उठाकर उस पर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचों-बीच से उसके दो टुकड़े कर दिये, ठीक वैसे ही, जैसे हाथी का बच्चा खेलते-खेलते ईंख तोड़ डाले।

भगवान् ने जिन्हें अपने वक्ष:स्थल पर स्थान देकर सम्मानित किया है, वे श्रीलक्ष्मीजी ही सीता के नाम से

जनकपुर में अवतीर्ण हुई थीं। भगवान् ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया। अयोध्या लौटते समय मार्ग में उन परशुरामजी से भेंट हुई जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को राजवंश के बीज से भी रहित कर दिया था। भगवान् ने उनके बढ़े हुए गर्व को नष्ट कर दिया। इसके बाद पिता के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथ ने अपनी पत्नी के अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्य के बन्धन में बँध गये थे, इसलिये भगवान् ने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणों के समान प्यारे राज्य, लक्ष्मी, प्रेमी, हितैषी, मित्र और महलों को वैसे ही छोड़कर अपनी पत्नी के साथ यात्रा की, जैसे मुक्तसंग योगी प्राणों को छोड़ देता है।

वन में पहुँचकर भगवान् ने राक्षसराज रावण की बहिन शूर्पणखा को विरूप कर दिया, क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत ही कलुषित, कामवासना से अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान-प्रधान भाइयों को जो संख्या में चौदह हजार थे, हाथ में महान् धनुष लेकर भगवान् श्रीराम ने नष्ट कर डाला और अनेक प्रकार की कठिनाइयों से परिपूर्ण वन में वे इधर-उधर विचरते हुए निवास करते रहे। परीक्षित! जब रावण ने सीताजी के रूप, गुण, सौंदर्य आदि की बात सुनी, तो उसका हृदय कामवासना से आतुर हो गया। उसने अद्‌भुत हरिण के वेष में मारीच को उनकी पर्णकुटी के पास भेजा। वह धीरे-धीरे भगवान् को वहाँ से दूर ले गया। अन्त में भगवान् ने अपने बाण से उसे बात-ही-बात में वैसे ही मार डाला, जैसे दक्ष प्रजापति को वीरभद्र ने मारा था। जब भगवान् श्रीराम जंगल में दूर निकल गये, तब (लक्ष्मणजी की अनुपस्थिति में) नीच राक्षस रावण ने भेड़िये के समान विदेहनन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजी को हर लिया। अपनी प्राणप्रिया सीताजी से बिछुड़कर अपने भाई लक्ष्मण के साथ भगवान् श्रीराम वन-वन में दीन की भाँति घूमने लगे। इसके बाद भगवान् ने उस जटायु का दाह संस्कार किया, जिसके सारे कर्म बन्धन भगवत् सेवा रूप कर्म से पहले ही भस्म हो चुके थे। फिर भगवान् ने कबन्ध का वध किया और तदनन्तर सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता करके बालि का वध किया। इसके बाद वानरों के द्वारा अपनी प्राणप्रिया का पता लगवाया। लीला पुरुष भगवान् श्रीराम फिर बन्दरों की सेना के साथ समुद्र तट पर पहुँचे। उन्होंने अनेकानेक पर्वतों के शिखरों से समुद्र पर पुल बाँधा। इसके बाद विभीषण के परामर्श से भगवान् ने सुग्रीव, नल, हनुमान आदि प्रमुख वीरों और वानरी सेना के साथ लंका में प्रवेश किया। वह तो श्रीहनुमानजी के द्वारा पहले ही जलाई जा चुकी थी। राक्षसों की विशाल सेना आ गई और भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान् और पनस आदि वीरों को अपने साथ लेकर राक्षसी सेना का सामना किया।

जब राक्षसों की सेना का नाश हुआ जा रहा था, तो राक्षसराज रावण क्रोध में भरकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो भगवान् श्रीराम के सामने आया। उस समय इन्द्र का सारथि मातलि बड़ा ही तेजस्वी दिव्य रथ लेकर आया और भगवान् श्रीराम उस पर विराजमान हुए। भगवान् श्रीरामजी ने रावण से कहा, "नीच राक्षस ! तुम कुत्ते की तरह हमारी अनुपस्थिति में हमारी प्राणप्रिया पत्नी को हर लाये? तुमने दुष्टता की अति कर दी। तुम्हारे जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय और कौन होगा? जैसे काल को कोई टाल नहीं सकता, कर्त्तापन के अभिमानी को वह फल दिये बिना रह नहीं सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हें तुम्हारी करनी का फल चखाता हूँ।

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः
कान्तासमक्षमसतापहृता श्ववत् ते।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः।।
(भागवत ९/१०/२२)

इस प्रकार रावण को फटकारते हुए भगवान् श्रीराम ने अपने धनुष पर चढ़ाया हुआ बाण उस पर छोड़ा। उस बाण ने वज्र के समान उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया। वह अपने दसों मुखों से खून उगलता हुआ विमान से गिर पड़ा, ठीक वैसे ही, जैसे पुण्यात्मा लोग भोग समाप्त होने पर स्वर्ग से गिर पड़ते हैं। उस समय उसके पुरजन-परिजन हाय-हाय करके विलाप करने लगे। राक्षसियाँ मन्दोदरी के साथ रोती हुई चल पड़ीं और रणभूमि में आयीं। मंदोदरी अपने पति रावण की मृत्यु पर विलाप करते हुए बोली – "हाय-हाय स्वामी ! एक वह दिन था, जब आपके भय से समस्त लोकों में त्राहि-त्राहि मच जाती थी। आज वह दिन आ पहुँचा कि आपका वह शरीर गीधों का आहार बन रहा है और अपने आत्मा को आपने नरक का अधिकारी बना डाला। यह सब आपकी मुर्खता और कामुकता का फल है।"

श्री शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित ! कोसलाधीश भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से विभीषण ने स्वजन-सम्बन्धियों का पितृयज्ञ की विधि से शास्त्रानुसार अन्त्येष्टि कर्म किया। तदनन्तर भगवान् श्रीराम ने अशोक वाटिका के आश्रम में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई श्रीसीताजी को देखा जो श्रीरामजी के विरह की व्याधि से ही पीड़ित और अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं। उन्हें इस दशा में देखकर श्रीरामजी का हृदय प्रेम और कृपा से भर आया। इधर भगवान् का दर्शन पाकर सीताजी का हृदय प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण हो गया, उनका मुखकमल खिल उठा। भगवान् ने विभीषण को राक्षसों का स्वामित्व, लंकापुरी का राज्य और एक कल्प की आयु दी और इसके बाद पहले सीताजी को विमान पर बैठाकर अपने दोनों भाई तथा सुग्रीव एवं सेवक हनुमानजी के साथ स्वयं भी विमान पर सवार हुए। इस प्रकार चौदह वर्ष तक का व्रत पूरा हो जाने पर उन्होंने अपने नगर की यात्रा की। उस समय जैसे मार्ग में ब्रह्मा आदि लोकपालगण उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे।

उधर जब भगवान् को यह मालूम हुआ कि भरतजी केवल गोमूत्र में पकाया हुआ जौ का दलिया खाते हैं, वल्कल पहनते हैं और पृथ्वी पर डाभ बिछाकर सोते हैं एवं उनकी जटाएँ बढ़ गई हैं, तब वे बहुत दु:खी हुए। उनकी दशा का स्मरण कर परम करुणाशील भगवान् का हृदय भर आया। जब भरतजी को मालूम हुआ कि मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीरामजी आ रहे हैं, तब वे पुरवासी, मंत्री और पुरोहितों को साथ लेकर एवं भगवान् की पादुकाएँ सिर पर रखकर उनकी अगवानी के लिये चले। सेठ-साहूकार, श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, पैदल चलनेवाले सेवक और महाराजाओं के योग्य छोटी-बड़ी सभी योग्य वस्तुएँ उनके साथ चल रही थीं। भगवान् को देखते ही प्रेम के उद्रेक से भरतजी का हृदय गद्गद् हो गया, नेत्रों से आँसू छलक आए, वे भगवान् के चरणों पर गिर पड़े। ''उन्होंने प्रभु के सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। नेत्रों से आँसू की धारा बहती जा रही है। भगवान् ने अपने दोनों हाथों से पकड़कर बहुत देर तक भरतजी को हृदय से लगाये रखा। भगवान् के नेत्रजल से भरतजी का स्नान हो गया।''

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्वाष्पलोचनः।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः।।

इसके बाद सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ भगवान् श्रीरामजी ने ब्राह्मण और पूजनीय गुरुजनों को नमस्कार किया तथा सारी प्रजा ने बड़े प्रेम से सिर झुकाकर भगवान् के चरणों में प्रणाम किया। उस समय उत्तरकोसल देश की रहनेवाली समस्त प्रजा अपने स्वामी भगवान् को बहुत दिनों के बाद आए देख अपने दुपट्टे हिला-हिलाकर पुष्पों की वर्षा करती हुई आनन्द से नाचने लगी। अयोध्यापुरी में जब भगवान् ने प्रवेश किया, उस समय वह पुरी आनन्दोत्सव से परिपूर्ण हो रही थी। राजमहल में प्रवेश करके उन्होंने अपनी माताओं, गुरुजनों, बराबर के मित्रों और छोटों का यथायोग्य सम्मान किया तथा उनके द्वारा किया हुआ सम्मान स्वीकार किया। श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी ने भी भगवान् के साथ-साथ सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार किया। उस समय जैसे मृतक शरीर में प्राणों का संचार हो गया, वैसे ही माताएँ अपने पुत्रों के आगमन से हर्षित हो उठीं। उन्होंने उनको अपनी गोद में बैठा लिया और अपने आँसुओं से उनका अभिषेक किया। उस समय उनका सारा शोक मिट गया। इसके बाद वसिष्ठजी ने दूसरे गुरुजनों के साथ विधिपूर्वक भगवान् की जटा उतरवायी और बृहस्पति ने जैसे इन्द्र का अभिषेक किया था, वैसे ही चारों समुद्रों के जल आदि से उनका अभिषेक किया। इस प्रकार सिर से स्नान करके भगवान् श्रीराम ने सुन्दर वस्त्र, पुष्पमालाएँ और अलंकार धारण किये। सभी भाइयों और श्रीजानकी जी ने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और अलंकार धारण किये। उनके साथ भगवान् श्रीरामजी अत्यन्त शोभायमान हुए। भरतजी ने उनके चरणों में गिरकर उन्हें प्रसन्न किया और उनके आग्रह करने पर भगवान् श्रीराम ने राजसिंहासन स्वीकार किया। इसके बाद वे अपने-अपने धर्म में तत्पर तथा वर्णाश्रम के आचार को निभानेवाली प्रजा का पिता के समान पालन करने लगे। उनकी प्रजा भी उन्हें अपना पिता ही मानती थी। परीक्षित! जब समस्त प्राणियों को सुख देनेवाले परम धर्मज्ञ भगवान् श्रीराम राजा हुए, तब था तो त्रेता युग, परन्तु मालूम होता था मानों सतयुग ही है –

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत्।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे।।

(भागवत ९/१०/५२)

परीक्षित ! उस समय वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप और समुद्र सबके-सब प्रजा के लिये कामधेनु के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले बन रहे थे। इन्द्रियातीत भगवान् राम के राज्य में किसी को मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग

नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय, थकावट नाम मात्र के लिये भी नहीं थे। यहाँ तक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी। भगवान् श्रीराम ने एकपत्नी का व्रत धारण कर रखा था, उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियों के-से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्म की शिक्षा देने हेतु स्वयं उस धर्म का आचरण करते थे। सती शिरोमणि सीताजी अपने पति के हृदय का भाव जानती रहतीं। वे प्रेम से, सेवा से, शील से, अत्यन्त विनय तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणों से अपने पति भगवान् श्रीरामजी का चित्त चुराती रहती थीं।

उक्त लीलाओं के अतिरिक्त श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत में परीक्षित को भगवान् श्रीरामजी की अन्य लीलाओं को भी सुनाया है। श्री शुकदेवजी कहते हैं – परीक्षित ! भगवान् श्रीराम ने गुरु वसिष्ठजी को अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियों से युक्त यज्ञों द्वारा अपने-आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयं प्रकाश आत्मा का यजन किया। उन्होंने होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण, अध्वर्यु को पश्चिम और उद्गाता को उत्तर दिशा दे दी। उनके बीच में जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्य को दे दी। उनका यह निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डल का एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है। इस प्रकार सारे भूमण्डल का दान करके उन्होंने शरीर के वस्त्र और अलंकार ही अपने पास रखे। इसी प्रकार, महारानी सीताजी के पास भी केवल मांगलिक वस्त्र और आभूषण ही बचे रहे। जब आचार्य आदि ब्राह्मणों ने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणों को ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदय में ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेम से द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान् को लौटा दी। उन्होंने भगवान् से कहा – प्रभो ! आप सब लोकों के एकमात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदय के भीतर रहकर अपनी ज्योति से अज्ञानान्धकार का नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में भला, आपने हमें क्या नहीं दे रखा है। भगवन् ! आपके इस राम रूप को हम नमस्कार करते हैं।

परीक्षित् ! एक बार अपनी प्रजा की स्थिति जानने के लिये भगवान् रामजी रात में छिपकर बिना किसी को बतलाए घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसी की यह बात सुनी। वह अपनी पत्नी से कह रहा था। अरी ! तू दुष्ट और कुलटा है। तू पराये घर में रहकर आयी है। स्त्री-लोभी राम भले ही सीताजी को साथ रख लें, परन्तु मैं तुझे फिर नहीं रख सकता। सचमुच सबको प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है, क्योंकि मूर्खों की तो कमी नहीं है। जब भगवान् श्रीराम ने बहुतों के मुँह से ऐसी बात सुनी, तो वे लोकापवाद से कुछ भयभीत-से हो गये। उन्होंने सीताजी का परित्याग कर दिया। सीताजी वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहने लगीं। वे उस समय गर्भवती थीं। यथासमय उन्होंने एक साथ ही दो पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम हुए – कुश और लव। वाल्मीकि मुनि ने उनके जात-कर्मादि संस्कार किये। लक्ष्मणजी के दो पुत्र हुए – अंगद और चित्रकेतु। भरतजी के भी दो पुत्र हुए – तक्ष एवं पुष्कल और शत्रुघ्नजी के भी दो पुत्र हुए – सुबाहु और श्रुतसेन। भरतजी ने दिग्विजय में करोड़ों गन्धर्वों का संहार किया। उन्होंने सबका धन लाकर अपने बड़े भाई भगवान् श्रीराम की सेवा में निवेदन किया। शत्रुघ्नजी ने मधुवन में मधु के पुत्र लवण नामक राक्षस को मारकर वहाँ मथुरा नाम की नगरी बसाई। भगवान् श्रीराम के द्वारा निर्वासित सीताजी ने अपने पुत्रों को वाल्मीकिजी के हाथों में सौंप दिया और भगवान् श्रीराम के चरणकमलों का ध्यान करती हुई वे पृथ्वी देवी के लोक में चली गयीं। यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीराम ने अपने शोकावेश को बुद्धि के द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होने पर भी वे उसे रोक न सके, क्योंकि उन्हें जानकीजी के पवित्र गुण बार-बार स्मरण हो आया करते थे।

इसके बाद भगवान् श्रीराम ने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्ष तक अखण्ड रूप से अग्निहोत्र किया। तदनन्तर अपना स्मरण करनेवाले भक्तों के हृदय में अपने उन चरणकमलों को स्थापित करके, जो दण्डक वन के काँटों से बिंध गये थे, अपने स्वयंप्रकाश परम ज्योतिर्मय धाम में चले गये। जिन्होंने भगवान् श्रीराम का दर्शन और स्पर्श किया, उनका सान्निध्य अथवा अनुगमन किया, वे सब-के-सब तथा कोसलदेश के निवासी भी उसी लोक में गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योग-साधना के द्वारा जाते हैं। जो पुरुष अपने कानों से भगवान् श्रीराम का चरित्र सुनता है, उसे सरलता, कोमलता, आदि गुणों की प्राप्ति होती है। परीक्षित ! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जाता है –

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते।। ○○○

भजन एवं कविता

श्रीराम-स्तुति

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

श्रीराम राम जय राम राम, जय सब सुख-मंगलकारी।
जय नमो नारायण कृपापरायण, भवभयबंधनहारी।।
जय दशरथनंदन सब सुखवर्धन, स्वर्णमुकुट सिर-धारी।
जय धर्मविभूषण सीतापति हे, तारी अहिल्या नारी।।
जय सुरगणपूजित लक्ष्मणसेवित, सब-मन-नन्दनकारी।
जय भुवन महेश्वर सब जनमोहक, हनुमत-हृदय-विहारी।।
जय शंकरपूजित लक्ष्मणसेवित, सीताशोक-निवारी।
याचक हूँ तव चरण-भक्ति का, कृपा करो शुभकारी।

रास्ते बनाना पुण्य है

बाबूलाल परमार, मध्यप्रदेश

बोलना आता हो, तो बोलो वरना मौन रहो ।
बोलना जरूरी हो, तो सोच-विचार कर कहो ।
सुनना पड़ा अटपटा, तो सुनो और सहो ।
बिना काम, न बोलो, न सुनो, न कहो ।।
रास्ते देना पुण्य है, रास्ते रोकना पाप है,
रास्ते बताना पुण्य है, रास्ते भटकाना पाप है ।
रास्ते पर चलना और चलाना पुण्य है 'बाबूलाल'
रास्ते का रोड़ा बनना पाप और अभिशाप है ।।

राम लला प्रकट भयो

आनन्द तिवारी पौराणिक, महासमूँद

सुर, मुनि, संत अति आनन्द हुयो ।
अवधपुर, रामलला प्रकट भयो ।।
भरत, लछमन, शत्रुघ्न संग राम ।
हर्षित जननी, तात लखि पूरनकाम ।।
देव, भाग, यक्ष, नर, किन्नर ।
पुष्प बरसावत, अंजुरी भर-भर ।।
सन्त, विप्र अति दान धरयो ।
अवधपुर, रामलला प्रकट भयो ।।
दुन्दुभि, झांझ, मृदंग, बाजत ।
हर्षित पुरजन, नाचत, गावत ।।
जोगी भेस धरे सिव-संकर ।
शंख बजावत पधारे, महल के भीतर
प्रभु छबि लखि, मन हरस भरयो ।
अवधपुर, राम लला प्रकट भयो ।।

श्रीराम के प्रिय आप हैं

प्राणनाथ पंकज, चण्डीगढ़

धर्मतरु के मूल हैं, जो पुण्य के आधार हैं ।
ज्ञान-जलनिधि के लिये जो पूर्ण शशि साकार हैं ।।
सूर्य हैं वैराग्य-पंकज को खिलाने के लिये,
त्रिविध तापों के हरण-हित शान्ति के आगार हैं ।।
पाप-वन के दहन को दावाग्नि का जो रूप हैं ।
मोह-तम घन घर करते वायु बन संहार हैं ।।
स्वयं ब्रह्मा के प्रियात्मज और शामक कलुष के,
आपके प्रिय राम हैं, श्रीराम के प्रिय आप हैं ।।
योगियों के ईश हैं, शिव और शत्रु मनोज के,
आपके श्रीचरण में प्रणिपात बारम्बार है ।।

आज्ञाकारी श्रीराम

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

जब राजा दशरथ राम को राजगद्दी पर बिठाने जा रहे थे, तब सेविका मंथरा ने रानी कैकेयी के मन को राम के प्रति कलुषित कर दिया था। राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वरदान दिए थे। कैकयी ने राजा दशरथ से पहला वरदान माँगा कि उनके पुत्र भरत को राजा बनाया जाए और दूसरा वरदान था कि राम को १४ वर्ष के लिए वनवास भेज दिया जाए। यह सुनकर दशरथ अचंभित हुए और कैकेयी से निवेदन करने लगे कि वे अपने मन को बदल लें। परन्तु वे कैकेयी को सहमत न कर पाए। राजा दशरथ ने राम को बुलाया। राम अपने पिता के कक्ष में गए और देखा कि वे दु:खग्रस्त हैं। राम ने दु:ख का कारण जानना चाहा। कैकेयी ने उन्हें दशरथ के द्वारा दिये गए वचन के बारे में बताया। राम ने कैकेयी को आश्वासन दिया कि वे अपनी माँ कौशल्या से मिलने के बाद उसी दिन १४ वर्ष के वनवास के लिए जाएँगे।

श्रीराम माता कौशल्या से मिले और मृदुता के साथ उनको सब बात बताई। यह सुनते ही माता कौशल्या अचेत होकर गिर गईं। चेतना आने पर उन्होंने अपनी नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा, ''जिस प्रकार तुम्हारे लिए पिता पूजनीय हैं, उसी तरह मैं भी एक माता होने के नाते तुम्हारे लिए पूजनीया हूँ।'' इसलिए मैं तुमको वनवास जाने की अनुमति नहीं दूँगी। माता की सेवा में उपस्थित रहना ही सबसे उत्तम धर्म-आचरण माना जाता है। यदि तुम मुझे छोड़कर जाते हो, तो मुझे असहनीय पीड़ा होगी और जब तक मृत्यु न आ जाए, तब तक मैं उपवास करती रहूँगी। अगर मुझे छोड़कर चले गए, तो मेरे कष्ट और मृत्यु का भार उठाना पड़ेगा और पाप के भागी हो जाओगे। यद्यपि कौशल्या ने स्पष्टतया राम को वनवास जाने से मना किया, परन्तु भगवान राम माता-पिता के परस्पर विरोधात्मक आदेशों से निपटने के लिए विवश थे।

श्रीराम ने माता कौशल्या को बताया कि राजा दशरथ कैकेयी को दो वरदान दे चुके हैं, यद्यपि कैकयी ने ऐसा करके पिताजी को ठेस पहुँचाई है, परन्तु वे सत्य वचन का पालन करने के लिए कटिबद्ध हैं। पिताजी का आचरण धर्म के अनुरूप है। इसलिए उनके आदेशों का पालन करना केवल मेरा ही नहीं, माँ, आपका भी कर्तव्य है। पिता की आज्ञा-पालन करना पुत्र का कर्तव्य होता है। पिता का आदेश धर्मानुसार है, इस स्थिति में पिता की आज्ञा का पालन कर वनवास जाना ही मेरे लिए उचित है। यह सुनकर माता सहमत हो गईं, परन्तु उनके साथ वनवास जाने की हठ करने लगीं। परन्तु राम ने कहा, पिताजी एक तो कैकेयी के कृत्य के कारण दु:खित हैं और इस स्थिति में उनका साथ छोड़ना आपकी क्रूरता ही होगी, क्योंकि वे इस दु:ख को सहन नहीं कर पाएँगे।

माता कौशल्या श्रीराम की बातों से सहमत और प्रसन्न हुई तथा उन्हें आशीर्वाद दिया, पुत्र ! धर्म तुम्हारी रक्षा करे। माता-पिता की सेवा से अर्जित पुण्य वन में तुम्हारी रक्षा करे। माँ ने श्रीराम को वनवास जाने की अनुमति दी और इस प्रकार आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद श्रीराम ने माता कौशल्या को साष्टांग प्रणाम कर विदा ली।

शास्त्रों का कथन है कि हमें अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए। यद्यपि, कई बार ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जब माता-पिता की बात विरोधात्मक होती है। उस स्थिति में पिता की आज्ञाकारिता माता की अवज्ञा बन जाती और माता की आज्ञाकारिता पिता की अवज्ञा। हम देखते हैं कि स्वयं भगवान राम को भी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा। इस नैतिक दुविधा में भगवान राम ने जो आज्ञाकारी संकल्प लिया वह सब के लिए शिक्षाप्रद है। अत: मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी को आदर्श मानकर हमें माता-पिता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहण करना चाहिए। ❍❍❍

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (४०)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

महुला की बातें

यहाँ महुला गाँव का भी थोड़ा परिचय दे देना उचित होगा। पहले महुला एक विशाल गाँव था। यहाँ ब्राह्मण आदि अनेक जातियाँ निवास करती थीं। द्रुतगामिनी गंगा के द्वारा दो-तीन बार कगारों पर कटाव से महुला की प्राचीन समृद्धि तथा शोभा-सम्पदा नष्ट हो गयी। इस गाँव का वास्तविक नाम 'अनन्तपुर महुला' था। कटाव के भय से इस महुला गाँव के निवासियों ने निकटवर्ती चण्डीपुर, महिषातली, बानीनाथपुर, बिनकार आदि स्थानों में निवास करना शुरु किया।

उन ब्राह्मण के साथ ही मैं 'चकेर-माठ महुला' तथा 'केदार-माटी महुला' में गया। भिक्षा-ग्रहण करने के बाद, एक ब्राह्मण सज्जन के पक्के मकान में मेरे ठहरने की व्यवस्था की गयी। उस मकान के मालिक नौकरी के निमित्त से बहरमपुर में निवास करते थे। वह मकान खाली पड़ा था और पश्चिम की ओर पेड़-पौधे होने के कारण उस गर्मी के मौसम में भी मकान काफी ठण्डा रहता था।

सुना है कि मेरे उस गाँव में आने के पूर्व वहाँ उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के एक शास्त्रज्ञ तान्त्रिक संन्यासी निवास करते थे। वे जिस छोटे-से झोपड़े में रहते थे, उसे भी मैंने देखा। महुला के लोग उन्हें 'दण्डी ठाकुर' कहते थे। मेरे आने के कोई एक-दो साल पूर्व ही उन्होंने देह-त्याग दिया था। उन्हीं के समान संन्यासी समझकर गाँव के सभी लोगों ने मुझे भी 'दण्डी ठाकुर' कहकर सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया। तभी से इस अंचल के हिन्दू-मुसलमान, सभी मुझे 'दण्डी' के रूप में ही जानते हैं।

बंगला संवत् १३०३ (अप्रैल, १८९७ ई.) के चैत्र-संक्रान्ति के दिन मैं 'चकेर-माठ महुला' से 'केदार-माटी महुला' आया था। उस अंचल के लोक उसे 'धूप का दिन' कहते हैं। क्योंकि नील का व्रत लेनेवाले किसान लोग उस दिन संध्या के समय, ज्वलन्त करछुल जैसा एक पात्र अपनी कमर में बाँधकर ढाक-ढोल के ताल पर नाचते हैं, उसमें धूना जलाते हैं और अपने शरीर में तीर धँसाते हैं।

वहाँ 'योगवाशिष्ठ रामायण' उपलब्ध था और मैं उसे पढ़ सकूँगा, यह जानकर मुझे परम आनन्द हुआ। जिनके पास वह ग्रन्थ था, वे उस समय बहरमपुर नगर में थे।

१८९७ ई. में वैशाख के पहले दिन से मैं प्रतिदिन संध्या के समय कुछ लोगों को गीता की व्याख्या सुनाने लगा। कर्म की प्रेरणा से उन दिनों मेरी ऐसी अवस्था हो गयी थी कि चुपचाप बैठे रहना मेरे लिए असम्भव-सा हो उठा था। दो-चार दिनों बाद ही 'योगवाशिष्ठ' प्राप्त हो गया।

योगवाशिष्ठ रामायण

यहीं पर मैं योगवाशिष्ठ के विषय में बड़े संक्षेप में अपना मत लिपिबद्ध करता हूँ। योगवाशिष्ठ रामायण के राम दशरथ-नन्दन नहीं हैं; ये तथागत हैं, जिन हैं, बुद्ध हैं। इस पूरे ग्रन्थ में अनेकों बार जिन तथा बुद्ध का उल्लेख मिलता है। आदर्श जिन ही इस ग्रन्थ के देवता भी हैं।

कर्म और पुरुषार्थ ही 'योगवाशिष्ठ' के मेरुदण्ड हैं। कर्म ही महासाधन तथा निर्वाण-मुक्ति का एकमात्र उपाय है। योगवाशिष्ठ किसी प्रच्छन्न बौद्ध विद्वान की एक अतुल्य कीर्ति है। इस ग्रन्थ के रचयिता ने वेदान्त के आवरण में बौद्धधर्म का माहात्म्य स्थापित करने में अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है।

करीब चालीस वर्षों पूर्व मैंने एक समालोचक की दृष्टि से जिस योगवाशिष्ठ का अध्ययन किया था, उसमें समालोचना के विषय चिह्नित कर दिये थे। अब वह प्रति उपलब्ध नहीं है। मेरी इच्छा थी कि योगवाशिष्ठ पर विशद समालोचना लिखूँ, परन्तु इस कर्मसंकुल जीवन में वैसा कर पाना सम्भव नहीं हो सका। ऐसी अनेक कामनाएँ अंकुर के रूप में ही नष्ट हो चुकी हैं।

दुर्भिक्ष की कराल-मूर्ति और लोगों की उन्नति हेतु प्रार्थना

अब मैं एकाग्रचित्त से योगवाशिष्ठ पढ़ने लगा। इधर गाँव के ब्राह्मण लोग एक-एक दिन, एक-एक जन के घर में

मुझे निमन्त्रण देकर खिलाने लगे। भोजन के पूर्व, वे लोग थोड़ा-सा चीनी का शरबत, भीगी मूंग की दाल, दो-चार फाँक खरबूज और एक मिठाई मेरे पास रख जाते। प्रतिदिन उसी समय कुछ भूखे बालक-बालिका मेरे पास खड़े रहते। मैं केवल शरबत ही पीता, बाकी सब कुछ उन बच्चों के हाथों में देकर उनसे चले जाने को कहता। इसी प्रकार मैं प्रतिदिन अपने जलपान की सामग्री दे डालता हूँ, यह बात कोई जान नहीं पाता।

इन सभी बालक-बालिकाओं के पिता और भाई रोजगार की खोज में अन्यत्र जाकर घर में कोई सूचना नहीं भेजते थे। वे लोग अपने पेट की पीड़ा में ही अपने स्त्री-पुत्र-कन्याओं की दुर्दशा की बात भूले रहते।

एक दिन एक ब्राह्मण आकर अपने घर भोजन का निमंत्रण दे गये। इसके बाद एक सज्जन ने आकर मुझे बताया कि एक परिवार दो दिनों से बिना कुछ खाये कष्ट उठा रहा है। उसके गृहस्वामी रोजगार की तलाश में जाकर आज तक एक पैसा भी नहीं भेज सके हैं। यह सुनकर मैं उन लोगों को देखने गया। मैंने बाहर से ही पूछा, ''माँ, क्या तुम लोगों को दो दिन से खाने को नहीं मिला?'' मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन बच्चे-बच्चियों की माँ भीतर से आर्तनाद कर उठी।

लौटकर मैंने अपने कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लिया और ठाकुर के समक्ष रो-रोकर प्रार्थना करने लगा। जिनके घर मेरे खाने की बात थी, उनकी माली हालत ठीक थी। उनके घर के ठीक पास ही इस अभावग्रस्त परिवार का निवास था।

काफी देर बाद, द्वार खोलकर मैंने देखा – सामने ही वे ब्राह्मण दुखी मन से बैठे हुए हैं। मुझे देखते ही वे बोले, ''चलिए, काफी देर हो गयी है।'' मैं बोला, ''दो दिन से भूखे पेटोंवाले दयनीय कृषक-परिवार के घर के पास बैठकर मैं किस हृदय से भोजन करूँगा।'' वे बोले, ''उनके लिये आज के अन्न की व्यवस्था कर देने पर आप खाएँगे न?'' मैं बोला, ''हाँ, तब तो मुझे खाने में कोई आपत्ति नहीं होगी।''

यह सब देखकर सोचने लगा – चौबीस परगना से जुड़े नदिया तथा मुर्शिदाबाद जिलों में अन्न के अभाव का यदि मुझे जरा भी आभास होता, तो मैं कटवा से ही मठ लौट जाता। परन्तु अब तो माँ-अन्नपूर्णा का आदेश पालन किये बिना, मैं कापुरुष के समान लौट ही नहीं सकता।

दस-बारह दिन इसी प्रकार अज्ञातवास में रहा। तदनन्तर मैंने मठ में पत्र लिखकर प्रेमानन्द को अपने यहाँ ठहरने का कारण बताया। मेरे आने के थोड़े ही दिनों पूर्व महुला में एक प्रायोगिक डाकघर (Experimental Post Office) खोला गया था। प्रेमानन्द का उत्तर आने के बाद गाँव के लोग मेरा परिचय जान गये।

इसके बाद मैंने एक ब्राह्मण के लिए सुरेशचन्द्र दत्त द्वारा संकलित 'श्रीरामकृष्ण उपदेश' नामक पुस्तक और अपने लिए ठाकुर का एक चित्र मँगवा लिया। कुछ दिन अपराह्न के समय गीतापाठ तथा व्याख्या चली। बाद में, खोल-करताल बजाते हुए दोनों बाँहें उठाकर नृत्य के साथ संकीर्तन आरम्भ हुआ। उस टोली में महुला के छोटे-बड़े बहुत-से लोग आकर संकीर्तन करते हुए मतवाले हो जाते।

ठाकुर का चित्र अपने पास रखकर, प्रतिदिन गंगास्नान के बाद मैं उन्हें एक-दो फूल अर्पित करके, दुर्भिक्ष-पीड़ित जन-साधारण के लिये सजल नेत्रों के साथ रोते हुए उनसे प्रार्थना करता। इसी प्रकार सुबह-शाम ठाकुर के पास बैठकर प्रार्थना करते-करते एक दिन मुझे उत्तर मिला; मानो ठाकुर कह रहे हैं, ''देख न, क्या होता है !''

मैं प्रतिदिन प्रात:काल गंगा-स्नान करने जाता था। बचपन से ही पाठशाला की पुस्तक में कन्धे पर हल लिये और सिर पर टोप रखे कृषक का चित्र देखकर मेरे मन में श्रद्धा का उद्रेक होता था और मैं काफी देर तक उसे देखता रहता। उन दिनों मेरी आयु इतनी कम थी कि मैं समझ नहीं पाता था कि कृषक का चित्र मुझे इतना अच्छा क्यों लगता है। महुला से गंगास्नान के लिये जाते समय मार्ग में सिर पर टोप रखे हल चलाते किसानों को देखकर मैं दौड़कर उनके पास चला जाता और उनके टोप को सिर पर रखकर रोते हुए उन लोगों की उन्नति के लिये प्रार्थना करता। महुला में गंगास्नान हेतु जाते हुए नर-नारी, मुझे उस अवस्था में देखकर विस्मयपूर्वक वहीं खड़े रह जाते।

श्रमजीवी तथा कृषिजीवियों की दुर्दशा देखकर मेरा हृदय कातर हो उठता और उन लोगों की भावी उन्नति की कामना से कैसा व्याकुल हो जाता, इसे एकमात्र अन्तर्यामी परमात्मा ही जानते हैं। मेरी कातर प्रार्थना प्रभु के पास पहुँची थी, यह बात वर्तमान उन्नतिशील स्वाधीन जातियों की ओर देखते ही समझा जा सकता है। **(क्रमशः)**

प्रसिद्ध तन्त्र और शक्तिपीठ कामाख्या

डॉ. महावीर सिंह

पूर्वांचल के पास जहाँ सौन्दर्य की बहुमूल्य राशि है, वहीं देश का प्रसिद्ध तंत्र-पीठ कामख्या भी है। यहाँ हर वर्ष लाखों की संख्या में पर्यटक तथा भक्त अपनी मनोकामना लेकर आते हैं। यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन तथा पहाड़ी के ऊपर बना हुआ है। कालिदास ने 'रघुवंशम्' में इस स्थल का वर्णन किया है। शक्ति-उपासना प्राचीन काल से इस देश में विद्यमान है। अथर्ववेद में भी तंत्र साधना का वर्णन है। आगमों का विषय ही तंत्र साधना है। प्रारम्भ में तंत्र-साधना को वेदसम्मत नहीं माना जाता था, लेकिन ऋग्वेद में स्वयं 'आकृति विद्या' का वर्णन है, जो तंत्र-विद्या ही है। बाद में निगमों में भी तंत्र-मंत्र का प्रचार हुआ तथा वैष्णव पंथ में भी तंत्र का समावेश हो गया। महायान शाखा के बौद्ध अनुयाइयों ने तंत्र-साधना को अपना लिया।

पतंजलि के योगशास्त्र और बौद्धों की सहज साधना से मिल-जुलकर एक नई साधना-पद्धति बन गयी थी, जिसे ७४ सिद्धों और नाथों ने प्रचारित किया। इन गुह्य साधनों के लिये एकान्तवास की आवश्यकता होती थी। अत: पर्वतीय प्रदेशों में तंत्र-साधना विकसित हुई। तिब्बत, नेपाल, असम, बंगाल आदि के घने पहाड़ी जंगलों में अनेक पीठ बने। बंगाल, असम और उत्तरी नेपाल-तिब्बत में मातृसत्तात्मक परिवार की प्रथा थी, अत: माँ की पूजा का व्यापक प्रचार हुआ। माँ के साथ शिव की उपासना सहज रूप से स्वीकृत हो गई। पंच मकार की साधना आदिवासियों में भी थी। मैदानी भागों में सनातन धर्म या जैन धर्म का प्रचार था। वहाँ शाकाहारी प्रथा के कारण हिंसक पूजा का प्रचलन कम रहा, फिर भी हर गाँव में चामुण्डा, शीतला माता, दुर्गा आदि की स्थापना होती थी।

कामाख्या पीठ – गौहाटी स्थित कामाख्या पीठ का विस्तृत वर्णन कालिका पुराण, कुब्जिका तंत्र, योगिनी तंत्र आदि में मिलता है। लगता है कालिका पुराण और योगिनी तंत्र की रचना इसी स्थान पर हुई है एवं इस पीठ की कथाएँ देवी भागवत से जुड़ गयीं। यह पीठ नीलांचल पर्वत पर स्थित है। यहाँ दश महाविद्याओं का निवास है तथा उनकी आराधना होती है। कामाख्या मन्दिर से अधिक ऊँची पहाड़ी की चोटी पर भुवनेश्वर-मन्दिर स्थित है।

अन्य पीठों के समान कामरूप पीठ की स्थापना ई. पू. दूसरी शताब्दी से अधिक प्राचीन नहीं है। देश के अन्य भागों में भी तंत्र पीठों की स्थापना लगभग प्रथम सदी की है।

कामाख्या मन्दिर, असम

इस दृष्टि से कामाख्या देवी का सम्बन्ध नरकासुर से जोड़ना उचित नहीं है। नरकासुर यदि महाभारत कालीन योद्धा था, तो भी उस युग में किसी तंत्र पीठ की सम्भावना नहीं हो सकती। महाभारत की रचना ई. की चार शताब्दियों पूर्व की है तथा महाभारत का आज जैसा रूप गुप्तकाल में ही पूरा हुआ है। अधिकांश तंत्र ग्रंथ गुप्तकाल में ही रचे गये तथा पुराणों की रचना गुप्तकाल से प्रारम्भ होकर लम्बे समय तक चलती रही। भविष्य पुराण में तो मुगल बादशाह तथा अंग्रेजों के नाम तक मिलते हैं। कालिका पुराण भी १०वीं या ११वीं शताब्दी की रचना है। इस समय तंत्र-साधना का चर्मोत्कर्ष था। देवी भागवत की रचना ८वीं शताब्दी के आसपास की है। अत: उससे तालमेल बैठाते हुए कालिका तंत्र की रचना बंगाल के किसी विद्वान ने की थी।

नरकासुर ने कामरूप राज्य की स्थापना की थी। उस समय यहाँ किरातो का राज्य था। किरातों में मातृसत्ता प्रधान थी तथा वे आदिवासी देवी की पूजा करते थे। कामाख्या किसी आस्ट्रिक या बोड़ों बोली का शब्द कामे-खागड़ से शायद बना है। ब्रह्मपुत्र नदी का जल लोहितवर्ण का होने के कारण उसे लोहित नदी कहा जाता था।

लोक कथा के अनुसार एक दिन भगवती ने अपने सौन्दर्य के दर्शन नरकासुर को दिये। नरकासुर दिव्य रूप-राशि पर मोहित हो गया तथा उसने भगवती से विवाह करने का प्रस्ताव किया। भगवती इस दुष्टता के लिए उसे दंडित करना चाहती थीं। अत: यह शर्त रख दीं कि यदि मेरे लिए एक रात में इस पहाड़ी पर प्रस्तर मार्ग और विश्रामगृह बनवा दे, तो प्रात: उससे विवाह कर लूँगी। नरकासुर कामांध होकर कठिन कार्य में लग गया तथा लगभग कार्य भी पूर्ण होने को था, तभी भगवती ने मुर्गे को बांग देने का निर्देश दे दिया, जब रात्रि शेष थी। नरकासुर ने क्रोध के कारण मुर्गे का पीछा किया और उसका वध कर दिया। भगवती प्रकट हुईं और नरकासुर की असफलता पर अट्टहास कर उठीं। भयानक हँसी सुन नरकासुर काँप उठा। बाद में देवी की आज्ञा से विष्णु ने नरकासुर का वध किया। आज भी नरकासुर द्वारा बनवाया हुआ पथ विद्यमान है। यह स्थान सदियों से आदिवासी संस्कृति का केन्द्र था। हिन्दू राजा ने इसका उद्धार कराया। कहा जाता है कि आठवीं शताब्दी के कूच बिहार के राजा विश्व सिंह ने इस स्थान का उद्धार कराया।

ऐतिहासिक शास्त्रार्थ – यह भी कहा जाता है कि शंकराचार्य से अभिनवगुप्त का शास्त्रार्थ कामाख्या में ही हुआ, जबकी अभिनवगुप्त कश्मीर के पण्डित थे। सम्भव है कि कश्मीर के राजा द्वारा बंगाल पर इसी युग में की गयी चढ़ाई के समय अभिनवगुप्त बंगाल तथा असम आये हों, क्योंकि उस समय कामरूप में हर्षदेव का शासन था तथा इसी समय कश्मीर के राजा यशोधर्म देव ने बंगाल पर चढ़ाई की थी। बंगाल भी श्री हर्षदेव के अधीन था। यह आठवीं शताब्दी की बात है। ११वीं शताब्दी में पाल वंश का शासन प्रारम्भ हुआ तथा कामरूप धर्म और वैभव का केन्द्र बन गया। अनेक विद्वान ब्राह्मणों को भूमि दान में दी गई। लेकिन कामाख्या पीठ का सही विकास कुच नरेश विश्वसिंह और शिवसिंह के समय में ही हुआ। १४१० में राजा विश्वसिंह ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर उसके उन्नयन का प्रयास किया। कामरूप उनके राज्य का भाग था। उस समय पीठ ध्वस्त अवस्था में थी तथा यहाँ एक सुन्दर जल प्रपात था, जहाँ लोग पूजा करते थे। एक बार राजा विश्वसिंह आहोम के राजा से युद्ध करते समय रास्ता भूलकर कामाख्या आ पहुँचे।

पानी के तलाश में वे उस झरने के निकट पहुँचे लेकिन अँधेरे के कारण परेशान थे। वहाँ माँ भगवती एक बुढ़िया के वेश में बैठी थीं। उन्होंने राजा विश्वसिंह तथा उनके भाई को जल दिया तथा ध्वस्त पीठ की ओर संकेत किया। दूसरे दिन महाराजा की बिछुड़ी सेना भी आ मिली। राजा को इस चमत्कार से आश्चर्य हुआ जिनसे प्रभावित होकर राजा ने मन्दिरों का निर्माण कराया। पहले राजा ने स्वर्ण मन्दिर बनवाने की प्रतिज्ञा की थी, लेकिन बाद में दो ईटों के बीच कुछ सोना रखकर मन्दिर पूरा किया गया। विश्वसिंह की मृत्यु के बाद नरनारायण ने १५३४ ई. में राज्यारोहण किया और अपने भाई चिलाराय को सेनापति बनाया, जो बड़ा पराक्रमी था। इन्होंने आहोम राजाओं को पराजित किया, लेकिन जब उनका युद्ध आहोम राजा से चल रहा था, तब १५५३ में बंगाल के सेनापति काला पहाड़ पठान ने कामरूप पर आक्रमण कर दिया तथा मन्दिर को ध्वस्त कर दिया। बाद में नरनारायण तथा चिलाराय ने बंगाल के मुसलमानी गौड़ राज्य पर आक्रमण करने की योजनी बनाई। यात्रा से पूर्व दोनों भाई कामाख्या पीठ में आये। गौड़ के बादशाह सुलेमान से चिलाराय का युद्ध हुआ, लेकिन वे पराजित हुए और बंदी

बना लिये गये। देवी ने उन्हें स्वप्न में बताया कि देवी की उपेक्षा के कारण ही यह दुर्गति हुई है। लेकिन देवी ने एक उपाय भी बताया – बादशाह की माता को साँप काट लेगा और कोई उपचार सम्भव नहीं होगा, केवल तुम उपचार कर सकोगे और इस प्रकार तुम्हें बादशाह मुक्त कर देगा। बात सच निकली। चमत्कार के कारण नरनारायण और चिलाराय ने मन्दिर का उद्धार कराया। यह कार्य १५५५ ई. से १५६५ ई. में पूरा हुआ। समारोह के साथ मन्दिर का उद्घाटन हुआ। पूजा के लिए बंगाल से योग्य ब्राह्मणों को बुलाया गया। निर्माण कार्य के सम्बन्ध में मन्दिर में शिलालेख उपलब्ध हैं। १८१७ में आये भूकम्प से मन्दिर की पुनः क्षति हुई, जिसे कूचबिहार के राजा ने ठीक कराया। आहोम राजाओं ने भी कामाख्या पीठ की व्यवस्था में अपना योगदान दिया तथा दश महाविद्या मन्दिरों का निर्माण कराया।

अनेक राजा तथा सेठों ने यहाँ मन्दिर, धर्मशाला तथा व्यवस्था सम्बन्धी कार्य के लिए अनुदान दिये हैं। प्रतिवर्ष यहाँ धनीमानी व्यक्ति उदारतापूर्वक धन देते हैं। प्रमुख मन्दिर में माँ भगवती की भग मूर्ति है, जिससे रक्तवत् जल निकलता है। माँ को प्रतिदिन भोग दिया जाता है, जिसमें अन्न, फल तथा मांस सम्मिलित रहता है। मन्दिर के प्रवेश द्वार के समक्ष अष्टधातु की बहुमूल्य मूर्ति है, जिसे हरगौरी मूर्ति कहा जाता है। इसके बाद कामेश्वरी देवी तथा कामेश्वर शिव का दर्शन किया जा सकता है। तत्पश्चात् भगवती की महामुद्रा-योनिमुद्रा का दर्शन एवं स्पर्श किया जाता है। यह स्थान भयानक अंधकार से आच्छादित रहता है। अतः सदैव दीपक प्रज्वलित रहता है। भग का आधा टोप से ढका रहता है। यही अंग कामाख्या में गिरा था।

माँ सती का शरीर कन्धे पर लिए हुए शंकरजी

शक्तिपीठ – कथा के अनुसार जब दक्ष प्रजापति ने यज्ञ किया, तो उसमें सती को निमंत्रित नहीं किया, लेकिन सती अपने पिता के घर जाना चाहती थीं। महादेवजी उन्हें जाने देना नहीं चाहते थे। उन्हें तपस्या में लीन देखकर सती अपने पिता के घर चली गयीं और वहाँ उन्होंने देखा कि उनके पति को ही निमंत्रित नहीं किया गया है, अतः सती अपमान का बदला लेने के लिये यज्ञकुंड में कूद पड़ीं। इधर शंकरजी को पता चला, तो व्याकुल होकर सती को खोजते हुए दक्ष के यहाँ पहुँच गये। क्रोध के कारण उन्होंने सती का शरीर अपने कंधे पर रख लिया और दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया। भगवान विष्णु ने देखा कि शंकरजी अत्यन्त व्याकुल हैं, तो उन्होंने सती के टुकड़े कर दिये, टुकड़े जहाँ-जहाँ गिरे, वहाँ-वहाँ शक्ति पीठ बन गये। कुल ५१ पीठ हैं। सती का भग-भाग कामरूप में गिरा। अतः यहाँ योनि की स्थापना की गयी तथा भगवती की पूजा का विधान किया गया। इसी प्रकार कामदेव को भस्म करने की कथा भी जुड़ी हुई है। जब शिव ने अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया, तो रति के अनुनय-विनय करने पर शिव ने उसे कामरूप-देवी की आराधना करने के लिए कहा। यहाँ कामदेव ने विश्वकर्मा की सहायता से मन्दिर बनवाया तथा कामदेव के नाम पर इस स्थान का नाम कामरूप पड़ा।

कामाख्या मन्दिर में दर्शनार्थियों की इतनी भीड़ रहती है कि दर्शन के लिये प्रातःकाल से लम्बी लाईन लगानी पड़ती है। मन्दिर के भीतर तथा बाहर अनेक साधक चंडीपाठ करते हुए मिलेंगे। अन्य तीर्थों के समान यहाँ भी पंडे लोग रहते है। जो कुछ आप देना चाहें, दे सकते हैं, कोई लूट-पाट नहीं है। भोग हेतु अलग से भोगगृह है। मन्दिर बाहर से बन्द जैसा है तथा आने-जाने के लिये एक ही द्वार होने से काफी भीड़ रहती है। पहाड़ी का मनोरम वातावरण, नीचे ब्रह्मपुत्र की पावन जलराशि तथा दूर तक फैले हुए श्यामल पहाड़ व्यक्ति को अपूर्व शान्ति प्रदान करते हैं। साधना के लिए इससे अधिक उपयुक्त स्थान कहाँ मिलेगा। मन्दिर का प्रबन्ध एक ट्रस्ट के द्वारा किया जाता है, जिसे अनुदान राशि तथा पूजा-भेंट की राशि से अच्छी आय होती है। ऊपर जाने के लिए सिटी बस सेवा है तथा घुमावदार सड़क भी बन गयी है। कामाख्या एक छोटी-मोटी बस्ती है, जिसमें पुजारी सपरिवार निवास करते हैं। होटल, दुकानें तथा अन्य वस्तुओं के लिये छोटा-सा बाजार भी है। ○○○ (साभार – सनातन संदेश)

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६४)

स्वामी भूतेशानन्द

(४०)

प्रश्न – कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:। (गीता- ३/२०) – यहाँ भी तो कर्म की स्तुति करते हुए कहा गया कि वे लोग सिद्ध हुए हैं।

महाराज – ऐसी व्याख्या मत करो। यदि उन्हें सिद्ध कहो, 'कर्मणासह' – कर्म के साथ, उस भाव से कहो। नहीं तो, कर्म के द्वारा यदि कहो, तो कर्म के द्वारा उनकी चित्तशुद्धि हुई, उसके बाद सिद्धि या ज्ञान हुआ।

– अर्थात् चित्तशुद्धि ही सिद्धि का कारण हुई।

महाराज – शंकराचार्यजी ने चित्तशुद्धि को ही लाया है। स्वामीजी कह रहे हैं – अलग से इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। चित्त शुद्ध होने पर ब्रह्माकार वृत्ति की आवश्यकता ही कहाँ है? चित्तशुद्ध अर्थात् जो हमारे ज्ञान को आवृत करके रखा है, उस आवरण के चले जाने से ही तो हो गया। अत: तब स्वप्रकाश आत्मा प्रकाशित हो गयी।

– तो चित्त शुद्ध होने पर ब्रह्माकार वृत्ति की आवश्यकता नहीं है क्या?

महाराज – वृत्ति की क्या आवश्यकता है? क्या हम ब्रह्मज्ञान को प्रकाशित कर पा रहे हैं? वह तो स्वप्रकाश है।

– वही चित्त तो रह जा रहा है, ऐसा ही है न? चित्त का तो नाश करना होगा।

महाराज – चित्त रह गया का अर्थ क्या है? शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा एक है। यह ठाकुर की स्पष्ट वाणी है। जब चित्त शुद्ध हो गया, तब वह लुप्त हो गया। जो आवरण कर रही थी, वह आवरण-शक्ति चली गई। तब नाश करने का कुछ रहा नहीं। कोई बाधा नहीं रही।

– ज्ञान, कर्म के समन्वय के सम्बन्ध में शंकराचार्यजी ने जो बार-बार कहा है, वह असम्भव है।

महाराज – वहाँ सकाम कर्म के सम्बन्ध में कहा गया है।

– क्या निष्काम कर्म के साथ कोई विरोध नहीं है?

महाराज – कोई विरोध नहीं है। निष्काम कर्म सहयोगी है।

– सहयोगी है?

महाराज – विरोध कहाँ होता है? निदिध्यासन के साथ विरोध होता है। यदि तुम सोचो – इस समय मुझे यह करना है, वह करना है, तब तुम्हारी निष्ठा ज्ञान में नहीं रहेगी। इसलिए वैसा सोचना ही मत। स्वभाविक रूप से चलना होगा।

– यह उन्होंने कहा है, किन्तु उत्तरकाशी में वेदान्ती कहते हैं – जगत तो तीन काल में नहीं है।

महाराज – मैं जगत को तो स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। जगत को, जैसे ब्रह्माकार वृत्ति को स्वीकार करो, तो वृत्ति से तुम मुक्त नहीं हो सकोगे। ब्रह्माकारा वृत्ति भी जगत जैसी ही है। ब्रह्माकारा वृत्ति भी जगत के ही अधीन है। ज्ञान के द्वारा अज्ञान की निवृत्ति होगी। ज्ञान से यदि ब्रह्माकारा वृत्ति होगी, तो सोचो, ब्रह्माकारा वृत्ति जायेगी कैसे? किसके द्वारा जायेगी ?

– वृत्तियाँ अपने पथ से ही चलेंगी।

महाराज – वृत्ति जायेगी कैसे? इसे शंकराचार्यजी भी नहीं समझा सके।

– निर्मली जैसा।

महाराज – निर्मली जैसा कहा जाता है। निर्मली एक बड़ी जैसी है। वह जल को स्वच्छ कर देती है। जल में निर्मली को डालने से वह स्वयं ही उसमें विलीन हो जाती है।

– काठ में आग रहती है, वह आग काठ को भी जलाकर समाप्त कर देती है। समाप्त कर देती है, अर्थात् स्वयं भी जलकर समाप्त हो जाती है।

महाराज –

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।४/३७।।

अर्थात्, जैसे अग्नि जल-जलकर काठ को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानाग्नि भी समस्त कर्म को भस्म कर देती है। समस्त कर्म से तात्पर्य है, शंकराचार्यजी कहते हैं कि

प्रारब्ध कर्म को छोड़कर (अन्य कर्मों को नष्ट कर देती है)। प्रारब्ध कर्म को भी यदि भस्म कर देती, तब तो शंकराचार्य भी नहीं रहते। इसीलिए प्रारब्ध कर्म को छोड़कर कहते हैं। चित्त जब शुद्ध हो गया, तब उसका कोई आवरण नहीं रहा।

– महाराज ! इस सम्बन्ध में आपने एक श्लोक कहा था।

महाराज –

प्रारब्ध सिद्ध्यते तदा यदा देहात्मना स्थिति।
देहात्म भानैवे स्यात् प्रारब्धः कुतः?

– प्रारब्ध तभी स्वीकार्य है, जब देहात्म-भाव है – मैं कर्म कर रहा हूँ, उसका फल मैं भोग रहा हूँ, किन्तु देहात्मभाव ही तो हमलोगों के सिद्धान्त में स्वीकृत नहीं हो रहा है। यह लक्ष्य नहीं है। देहात्म-भाव को हमलोग स्वीकार नहीं कर रहे हैं। इसलिए प्रारब्ध का त्याग करो। किसका प्रारब्ध?

– महाराज ऐसा भी तो कहा जा सकता है – प्रारब्ध का भोग नहीं करना पड़ता है। शरत महाराज ने श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग में उसी के आधार पर ऐसा कहा है। शरीर में यदि अहं-बोध नहीं रहे, तो प्रारब्ध-भोग कौन करेगा?

महाराज – किसका प्रारब्ध?

– दूसरे का हो, तो हो।

महाराज – जिसने कर्म किया है, उसका भोग हो। मैंने कर्म किया भी नहीं, मेरा भोग भी नहीं है।

प्रश्न – महाराज ! ज्ञान और भक्ति में कौन किसका अनुसरण करता है?

महाराज – ठीक वैसा कहा नहीं जा सकता। वास्तव में ज्ञान और भक्ति में कोई विभेद नहीं है। एक विषय हुआ – ज्ञान-विचार कई बार तत्त्वहीन तर्क में परिणत हो जाता है। यदि तुम अनुभव करो कि सम्पूर्ण संसार ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, तब स्वभावत: तुम्हारा प्रेम सबके प्रति समान रूप से प्रवाहित होगा, जैसा तुम अपने को प्रेम करते हो।

– महाराज ! मैं समझ नहीं पाता हूँ कि ज्ञान और भक्ति में कौन-सा मेरे लिए अनुसरणीय है।

महाराज – मैं नहीं जानता हूँ कि कोई इस विषय पर ऐसा चिन्तन करता है या नहीं। क्योंकि भक्तियोग सामान्य लोगों के लिये और ज्ञानयोग बुद्धिजीवियों के लिए अनुसरणीय है, ऐसा लगता है। मानव-समाज को साधारणत: दो भागों में विभक्त किया जाता है भावुक और बौद्धिक – बुद्धि-विचारशील मानव। स्वामीजी के मतानुसार भावुक व्यक्ति बुद्धिजीवियों की तुलना में श्रेष्ठ है। क्योंकि शुष्क ज्ञान-विचार कई बार किसी उच्चावस्था में नहीं उठ सकता, किन्तु प्रेमाभक्ति अनिर्वचनीय आनन्द और शान्ति का संधान दे सकती है। हृदयहीन ज्ञान-विचार में आनन्द का कोई स्थान नहीं है। किन्तु भक्ति प्रत्येक पग पर आनन्द का संधान दे सकती है।

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी ने कहा है – ''जितना ही मैं बड़ा हो रहा हूँ, जितना ही मैं वृद्ध हो रहा हूँ, उतना ही प्रत्येक वस्तु मुझे पौरुषयुक्त लग रही है, यही मेरी अभिनव वाणी है।'' पौरुषयुक्त शब्द का क्या अर्थ है?

महाराज – पौरुषयुक्त अर्थात् स्वयं पर, अपने शक्ति-सामर्थ्य पर विश्वास रखना।

– 'प्रत्येक वस्तु मुझे लग रही है' – 'लग रही है' का क्या अर्थ है?

महाराज – लग रही है – अर्थात् अपनी बुद्धि से, मेरे विचार के अनुसार मैं जिस निर्णय पर पहुँचा हूँ।

प्रश्न – महाराज ! क्या भक्ति भी पुरुषार्थ पर ही निर्भर करती है?

महाराज – अवश्य करती है। क्योंकि यदि तुम्हें लगे कि तुम लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकोगे या तुम स्वयं प्रयास न करो, तो चाहे वह भक्तियोग हो या ज्ञानयोग हो, तुम किसी भी प्रकार की भी उन्नति की आशा नहीं कर सकते।

प्रश्न – महाराज ! शरणागति क्या है?

महाराज – शरणागति एक महासमर्पण की प्राप्ति है, जिसे भक्ति की सहायता से प्राप्त किया जाता है। किसी दुर्बल व्यक्तित्व या शिशुसुलभ तुनुकमिजाजी से शरणागति प्राप्त करना सम्भव नहीं है। ईश्वर के पास अपने को सम्पूर्ण रूप से सर्मपण करने के लिये साहसी हृदय की नितान्त आवश्यकता है। शरणागति का अर्थ ही यही है।

– इसलिए सबसे पहले पुरुषार्थ आवश्यक है?

महाराज – एक प्रकार से वही आवश्यक है। पुरुषार्थ की और भी अन्य अनुभूतियाँ हो सकती हैं। किन्तु यह उनमें से एक है।

– महाराज ! यहाँ स्वामीजी क्या अर्थ कर रहे हैं?

महाराज – उन्होंने इसका अर्थ किया है – आत्मविश्वास, अपने ऊपर विश्वास।

– तब तो हमलोग प्रारम्भ में कह सकते हैं – पहले स्वयं को तैयार करो। इसके बाद भगवान के पास आत्मसमर्पण करो।

महाराज – उसके बाद?

– आत्मविश्वास बढ़ने और सच्ची शक्ति-संचित होने के बाद स्वयं को सम्पूर्ण रूप से भगवान के चरणों में समर्पित करो।

महाराज – प्रश्न का कोई अन्त नहीं है। तुम यात्रा प्रारम्भ कर आगे बढ़ते जाओ। ऐसा नहीं है कि पहले पुरुषार्थ अर्जित करना है, उसके बाद भक्ति करेंगे। केवल तुम आगे बढ़ते जाओ, यथार्थ पुरुषार्थ की सहायता से आगे बढ़ो।

– तब क्या शरणागति ही अन्तिम अवस्था है?

महाराज – विभिन्न दृष्टिकोणों से यह बात कही जाती है। कोई कहता है शरणागति, कोई कहता है प्रेमाभक्ति। लोग क्या कह रहे हैं या अनुभव कर रहे हैं, वही अन्तिम बात नहीं है। शरणागति एक उपलब्धि है और प्रेमाभक्ति भी एक उपलब्धि है। जिस व्यक्ति में प्रेमाभक्ति है, उसमें शरणागति रहेगी ही रहेगी। इन दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। आगे बढ़ो। यह अचानक किसी उच्च स्तर पर उठ जाना नहीं है। यह एक क्रमविकास अवस्था है। ईश्वर के आशीर्वाद या हमलोगों के नित्य प्रार्थना से जब शरणागति आती है, तभी हमलोग उनके पास समर्पण करने में सक्षम होते हैं। तुम्हारा जीवन तुम्हारे निर्णय पर निर्भर करता है, किन्तु ईश्वर की कृपा उनकी ही ऐकान्तिक इच्छा पर निर्भर करती है। तुमको निर्णय लेना होगा कि तुम कैसे अपने जीवन को संचालित करोगे, तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है। तुम्हारे जीवन का उतार-चड़ाव सम्पूर्ण रूप से ईश्वर की इच्छा के अधीन है। ठीक है?

– दैनिक प्रार्थना के द्वारा ईश्वर के पास कैसे आत्मसमर्पण किया जाय?

महाराज – सत्य कहा जाय, तो उसी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हमलोग प्रयास कर रहे हैं, क्योंकि अभी भी हमलोग उसे प्राप्त नहीं कर सके हैं। यह एक लम्बी परिक्रमा है। सत्य का अनुसंधान या परम लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए क्रमश: अग्रसर होना होगा। यह लम्बी यात्रा का मार्ग है।

– हमलोगों को इस पथ पर चलने के लिये पुरुषार्थ की नितान्त आवश्यकता है, यही तो?

महाराज – अवश्य ही। तुम्हारी अपनी क्षमतानुसार आत्मविश्वास ही नितान्त काम्य है। चरम लक्ष्य पर पहुँचाने के लिये यह आवश्यक है। तुममें आत्मविश्वास होना चाहिए, यही आत्मविश्वास कि साधन-भजन करने के लिये हमलोग स्वतन्त्र हैं। लक्ष्य पर पहुँचे सकेंगे, यदि यह विश्वास न रहे, तो कोई पऽऽग (पग) ही आगे नहीं बढ़ायेगा। **(क्रमशः)**

कविता

आदिशक्ति माँ जय जय

आनन्द तिवारी 'पौराणिक', महासमुंद

आदि शक्ति माँ ज्योति स्वरूपा।
छबि अलौकिक, दिव्य अनूपा।।
सकल सृष्टि की जननी भवानी।
काली, शारदा, लक्ष्मी महारानी।।
शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा।
कृपा स्वरूपा मातु कुष्माण्डा।।
स्कन्दमाता माँ कात्यायनी। कालरात्रि, जय गौर रानी।।
सिद्धिरात्री तुम हो जननी। पालिका, पोषिका, संहारिणी।।
सकल जीव जगत तव सन्तति।
रोग, दुख, दारिद्रय विपत्ति।।
दैहिक, दैविक, भौतिक ताप मिटाओ।
स्नेह, भक्ति, कृपा बरसाओ।।
मिटे जगत से भाव आसुरी। दैवी सम्पदा हो करुणा भरी।।
पाप, श्राप विताप हो क्षय। आदि शक्ति माँ, जय जय।।

असफलता को सफलता में बदलें

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन, उत्तर प्रदेश

किसी राज्य में एक बहुत लोकप्रिय नाटक मण्डली थी। तुषार नामक व्यक्ति उस दल का प्रमुख था, जो अपने अभिनय के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उसी राज्य में रुक्म नामक एक व्यवसायी रहता था। एक दिन उसने नाटक मंडली का नाटक देखा, तो उसकी भी नाटक मण्डली में अभिनय करने की इच्छा हुई। उसने जाकर तुषार से बात की और उसे यह प्रस्ताव दिया कि यदि उसे अभिनय का अवसर दिया जाए, तो वह उस नाटक का पूरा खर्च वहन करेगा। यह सुनकर तुषार मान गया और १ घण्टे के नाटक में रुक्म को अन्तिम आधे मिनट का एक संवाद दे दिया। इसके बाद अभ्यास आरम्भ हुआ। जब भी रुक्म की बारी आती, तो वह भय के कारण अपना संवाद भूल जाता। तुषार उसे प्रशिक्षण देता रहा। पर जैसे-जैसे नाटक का समय आते गया, रुक्म का भय बढ़ता गया। एक दिन वह समय आ गया, जब नाटक मंच पर प्रस्तुत हुआ। नाटक बहुत ही रोमांचक स्थिति में आ गया था। तब अंतिम समय में रुक्म को आकर गुप्तचर का अभिनय करना था। उसे नाटक के अन्त में आकर कोई गोपनीय संदेश राजा को सुनाना था, जिसके बाद वह नाटक समाप्त हो जाता। रुक्म राजा के समक्ष उपस्थित हुआ, पर कुछ बोल न सका। राजा के रूप में तुषार स्वयं बैठकर अभिनय कर रहा था। वह बार-बार एक ही संवाद दोहराने लगा, 'बोलो मेरे गुप्तचर! क्या संदेश लेकर आए हो?' पर फिर भी उसके मुँह से कुछ नहीं निकल रहा था। नाटक मण्डली के सदस्य भी अत्यन्त चिन्तित हो गए कि अब क्या होगा। लोग सोच रहे थे कि इतना सुन्दर नाटक हो रहा था, उसमें जैसे पानी फिर गया। लगभग एक मिनट के पश्चात् रुक्म मूर्छित हो गया। लोग आपस में कहने लगे कि अन्तिम समय में इस अभिनेता ने सब बिगाड़ दिया। तब राजा के सिंहासन में बैठा हुआ तुषार उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे रुक्म की ओर गया। वह रुक्म के पास बैठकर कहने लगा, 'वाह गुप्तचर ! तुमने कहा था कि तुम शत्रु के घर में घुसकर मुझे संदेश सुनाओगे, इसके लिए तुम्हें प्राण ही देना क्यों न पड़े और तुमने वह कर दिखाया। तुमने अपना प्राण न्योछावर करके अपना कर्तव्य पालन किया है। तुम्हारी उपस्थिति भी तुम्हारा संदेश है, जिससे मैं तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। इसके बाद पर्दा गिर जाता है और तालियों की गड़गड़ाहट से पूरा सभा-भवन गूँजने लगता है। वास्तव में अन्तिम समय में नाटक असफल हो चुका था, पर राजा के उस संवाद ने उस भूल को सफलता का रूप दे दिया। वैसे ही जीवन में असफलता को सफलता में बदलते देर नहीं लगती, पर इसके पीछे हमारा अन्तिम प्रयास होना चाहिए। आइए, आज हम असफलता को सफलता में बदलने के सूत्रों पर विचार करें।

यहाँ हम सफल होने के दो मार्गों पर विचार-विमर्श करेंगे। एक असफलता के कारणों का निराकरण और दूसरा सफलता के सूत्रों का पालन। यदि हम सफल होना चाहते हैं तो हमें अपनी असफलता के कारणों को खोजना चाहिए, क्योंकि असफलता के कारणों का निराकरण कर लेने से हम सफल हो सकते हैं। वहीं सफल होने के सम्भावित सभी नियमों का पालन करने पर हम सफलता के मार्ग पर सहजता से अग्रसर हो सकते हैं।

असफलता के कारण

लक्ष्यहीन होना – यदि किसी का लक्ष्य ही न हो, तो

सफल होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है। यदि लक्ष्य चिन्हित हो, तो उस लक्ष्य पर संधान किया जा सकता है। पर यदि लक्ष्य ही न हो, तो हम निशाना कहाँ लगाएँगे? लक्ष्य के अभाव में कर्म करना अंधेरे में तीर चलाने जैसा होता है, जहाँ सब कुछ अनिश्चित होता है। लक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। एक जीवन का लक्ष्य और दूसरा जीविकोपार्जन का लक्ष्य। जीवन के लक्ष्य में हम अच्छे मनुष्य, महान मनुष्य बनने का लक्ष्य रखते हैं, ईश्वरप्राप्ति का लक्ष्य रखते हैं। वहीं जीविकोपार्जन के लक्ष्य के द्वारा हम अपना जीविकोपार्जन कर सकते हैं, अर्थात् अपने रोटी, कपड़े और मकान आदि की व्यवस्था कर सकते हैं। जीवन में इन दोनों प्रकार के लक्ष्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। अधिकांश व्यक्ति जीविकोपार्जन का लक्ष्य ही निर्धारित करते हैं। परन्तु ऐसा करने पर जीवन के अन्त में उन्हें बहुत पछतावा होता है कि वास्तव में उन्होंने जीवन में क्या किया। जीविकोपार्जन के लक्ष्य के अभाव में व्यक्ति बेरोजगारी का शिकार हो जाता है और जीवन के लक्ष्य के अभाव में जीवन निरर्थक हो जाता है।

लक्ष्य को भूलना – कभी-कभी हम बहुत बड़ा लक्ष्य बनाते हैं, पर समय के साथ-साथ हम दूसरे कार्यों में इतने व्यस्त और मस्त हो जाते हैं कि हम अपना वास्तविक लक्ष्य भूल जाते हैं। जैसे एक साधक ईश्वरप्राप्ति के लिए अपना घर-बार छोड़कर आता है। पर यदि वह जगत के किसी प्रलोभन में फँस जाता है, तो वह अपने मूल लक्ष्य से दूर हो जाता है। कभी-कभी विलासिता के कारण हम अपना लक्ष्य भूल जाते हैं। जैसे किसी विद्यार्थी ने परीक्षा में अच्छे अंक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया, पर मौज-मस्ती और सोने में समय गँवाया, तो वह अपने लक्ष्य को भूल जाएगा। इस प्रकार लक्ष्य को भूल जाने पर असफलता स्वाभाविक है।

लक्ष्य का परिवर्तन – यदि हम अपना लक्ष्य परिवर्तित करते रहें, तो हमारा सफल होना असम्भव है। कुछ लोग अपना लक्ष्य निर्धारित करते हैं, पर कुछ समय पश्चात् दूसरों से प्रभावित होकर अपना लक्ष्य बदल लेते हैं, ऐसी स्थिति में हम कभी सफल नहीं हो सकते। एक युवक ने निर्णय लिया कि वह इंजीनियरिंग की पढ़ाई करेगा, फिर नौकरी करेगा। कुछ दिन पश्चात् उसके विद्यालय में एक संगीत सभा का आयोजन हुआ। उसे देखकर उसकी संगीत में रुचि हो गई और वह भविष्य में गायक बनने का सपना देखने लगा। कुछ दिन पश्चात् उसने संगीत सीखना भी प्रारम्भ किया, पर वह सीखने के लिए धैर्य न रख सका। उसी समय खेल प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हुईं और वह खिलाड़ी बनने की सोचने लगा। कुछ दिन खेलों में ही लगा रहा। पर कुछ दिन बाद उसके विद्यालय में एक वक्ता आए, जिन्होंने व्यक्तित्व के विकास पर भाषण दिया। तब उस युवक ने सोचा कि अब वह वक्ता बनेगा। यदि इसी प्रकार हम अपने लक्ष्यों को परिवर्तित करते रहें, तो हमें सफलता कभी नहीं मिलने वाली। अत: एक निश्चित लक्ष्य रखकर उस पर पूरी शक्ति लगाने से ही हमें सफलता मिल सकती है।

विद्या का अभाव – हम जिस क्षेत्र में सफल होना चाहते हैं, यदि उस क्षेत्र में हमारी दक्षता न हो, तो हमारा सफल होना असम्भव हो जाता है। विद्या सफलता की प्रथम और एक अति आवश्यक इकाई है। यदि किसी की कृपा के द्वारा हमें कोई दायित्व मिल भी जाता है, तो भी हम विद्या के अभाव में उस दायित्व का पूर्णरूप से निर्वहण नहीं कर सकेंगे। एक बार एक दल भ्रमण के लिए किसी पूर्वांचल राज्य में गया था। घूमते हुए वे सब एक अस्पताल पहुँचे। वहाँ के गाइड ने उन्हें बताया कि यह राज्य का सबसे बड़ा अस्पताल है। पर यात्रियों को वहाँ रोगी ही दिखाई नहीं दे रहे थे। तब उनमें से किसी ने पूछा यहाँ रोगी तो दिखाई नहीं देते। तब गाइड ने उत्तर देते हुए कहा, हाँ, यह सच है। यहाँ अधिक रोगी नहीं आते। कारण पूछने पर उसने बताया कि यहाँ के विद्यार्थी बारहवीं की कक्षा उत्तीर्ण करने पर ही मेडिकल में स्थान पा जाते हैं। जिस किसी भी तरह परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर उन्हें डॉक्टर की उपाधि मिल जाती है, पर उन्हें बहुत अधिक ज्ञान नहीं होता। वे शासकीय नौकरी तो पाते हैं, पर रोगी उनसे चिकित्सा करवाने से डरते हैं। यहाँ के लोगों को शासकीय नौकरी बहुत सरलता से मिल जाती है। व्यवसाय में भी इन्हें बहुत छूट मिलती है, इन्हें कर नहीं देना पड़ता है। अत: इनके पास धन का अभाव नहीं है, इसलिए वे चिकित्सा के लिए दिल्ली, चेन्नई, मुम्बई आदि स्थानों में चले जाते हैं। इसी कारण यहाँ के अस्पतालों में भीड़ देखने को नहीं मिलती। इस प्रकार अल्प शिक्षा के द्वारा उपाधि प्राप्त कर लेने से व्यक्ति सफल नहीं हो सकता। एक चिकित्सक की सफलता तो एक अच्छे चिकित्सक बनने में है, शासकीय नौकरी पाने में नहीं।

तैयारी की कमी – अधिकांशत: हमारी असफलता का कारण उचित तैयारी की कमी होती है। कक्षाएँ प्रारम्भ होने

पर अधिकांश विद्यार्थी मौज-मस्ती से अपने दिन प्रारम्भ करते हैं। पिकनिक, मनोरंजन, सैर-सपाटा, सोशल मीडिया और जन्मदिन जैसे मनोरंजक कार्यों में उनका दिन चला जाता है। फिर परीक्षा के समय दिन-रात पढ़ाई करते हैं। जब तक पढ़ाई नहीं कर रहे थे, तब तक कोई समस्या भी नहीं होती थी। पर अन्तिम समय में उन्हें ज्ञात होता है कि उनकी तैयारी में कमी है। तब ऐसी स्थिति में और इतने कम समय में उस कमी को पूर्ण नहीं किया जा सकता, तब पछताने से भी कुछ लाभ नहीं होता।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, "कभी असफलता मिलने पर हम यदि बारीकी से उसकी छान-बीन करें, तो निन्यानबे प्रतिशत यही पाएँगे कि उसका कारण था हमारा साधनों की ओर ध्यान न देना। हमें आवश्यकता है अपने साधनों को पुष्ट करने की और उन्हें पूर्ण बनाने की। यदि हमारे साधन बिलकुल ठीक हैं, तो साध्य की प्राप्ति होगी ही।" (वि.सा. ९/१७५)

अभ्यास की आवश्यकता – बाल्यकाल में अर्जुन के धनुष-अभ्यास को देखते हुए एक दिन उनके गुरु द्रोणाचार्य ने कहा था कि उसे रात्रि में भोजन न दिया जाए। पर एक रात्रि अर्जुन भोजन कर रहे थे। तभी हवा चलने के कारण दीपक बुझ जाता है, पर अर्जुन भोजन करते रहते हैं। तब उनके मन में विचार आता है कि अन्धेरा होने पर भी उनके हाथ ठीक मुँह में कैसे जाते हैं। यदि अभ्यास के द्वारा हम अंधकार में भी भोजन कर सकते हैं, तो हम धनुर्विद्या का अभ्यास क्यों नहीं कर सकते? यह सोचकर वे रात्रि में धनुष अभ्यास करने लगे और आगे चलकर वे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बन सके। विद्या को ग्रहण करना जितना आवश्यक होता है, उतना ही उसका अभ्यास भी आवश्यक होता है। इतना ही नहीं, विद्या पूरी हो जाने पर भी उसका बारम्बार अभ्यास अत्यन्त आवश्यक होता है। युद्ध-विद्या सीख जाने के पश्चात् भी युद्ध का अभ्यास निरन्तर करना पड़ता है, अन्यथा युद्ध में पराजय निश्चित होती है।
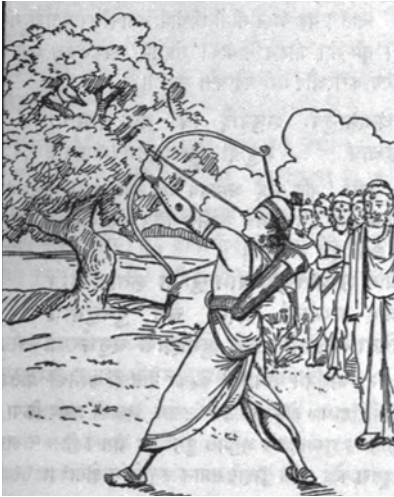
धनुर्विद्या का अभ्यास करते हुए अर्जुन

गलतियों को दोहराना – कई बार हम गलतियों को बार-बार दोहराते रहते हैं। गलती का हो जाना कोई बुरी बात नहीं है, यद्यपि इससे हमें असफलता मिलती है, किन्तु ये गलतियाँ और असफलताएँ हमें जीवन में अनुभव प्रदान करती हैं। पर उन गलतियों को दोहराते रहना अवश्य ही बहुत बड़ी गलती होती है और जानबूझकर गलतियाँ करना तो जीवन की बहुत बड़ी गलती होगी। यदि हम गलतियों को दोहराते रहेंगे, तो कभी सफल नहीं हो सकते। गलतियों की उपेक्षा करना, हमें उपेक्षित बना सकता है। कभी-कभी हम अपने अहंकार के कारण अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करना चाहते, पर इससे हमें ही हानि होती है। कभी-कभी हमारे संस्कार हमारी गलतियों के कारण होते हैं, जो हमें खींचकर हम से गलतियाँ करवाते हैं। कारण जो भी हो, पर हमें अपनी गलतियों का विश्लेषण करना चाहिए और यथासम्भव उसमें सुधार करना चाहिए।

आलस्य – जब तक हम आलस्य के मित्र होते हैं, तब तक असफलता भी हमारा साथ नहीं छोड़ती। आलस्य के कारण राजा को भी रंक होते देर नहीं लगती। आलसी व्यक्ति कभी कोई बड़ी उपलब्धि नहीं पा सकता। यदि उसे कुछ विरासत में मिल भी जाए, तो वह उसे सम्भाल कर नहीं रख सकता। एक धनाढ्य सेठ का बड़ा ही आलसी पुत्र था। वह घर या व्यवसाय का कोई कार्य नहीं करता था। एक दिन अचानक उसके पिता का देहान्त हो जाता है। अब पूरा दायित्व उसके कन्धों पर आ जाता है, पर फिर भी वह प्रत्येक कार्य नौकरों को सौंप दिया करता था और स्वयं आराम किया करता था। धीरे-धीरे उसके नौकर धनी होने लगे और वह निर्धन, पर उसे इसका भान भी नहीं था। एक दिन उसका व्यवसाय पूरी तरह से बन्द हो गया। अपना पेट पालने के लिए भी उसे कोई नौकरी नहीं मिल रही थी। तब अन्त में उसे अपना जीवन निर्वाह करने के लिए उनकी नौकरी करनी पड़ी, जो कभी उसके व्यवसाय में नौकर का कार्य किया करते थे।

आत्मविश्वास का अभाव – अच्छे-से-अच्छे बुद्धिमान व्यक्ति में भी यदि आत्मविश्वास की कमी हो, तो वह असफल

हो जाता है। कई बार विद्यार्थियों को देखा गया है कि उन्होंने बहुत अच्छी पढ़ाई की है, पर परीक्षा के समय आत्मविश्वास खो बैठते हैं। इस प्रकार वे परीक्षा में ठीक ढंग से लिख नहीं पाते और अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। आत्मविश्वास के अभाव में बड़ी-बड़ी विद्यायें काम नहीं आतीं या उन विद्याओं का हम प्रयोग नहीं कर पाते। वहीं एक आत्मविश्वास से भरा हुआ व्यक्ति दुर्बल होने पर भी अपने आत्मविश्वास के बल पर सफल हो जाता है। अत: हमें अपने आत्मविश्वास को सदा जगाए रखना चाहिए। छोटी-छोटी सफलताएँ हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाती हैं। यदि कभी असफल होकर हमारा आत्मविश्वास टूट गया हो, तो भी हमें छोटे-छोटे प्रयासों के द्वारा अपने आत्मविश्वास को बढ़ाना चाहिए।

समय का दुरुपयोग – असफलता का एक मुख्य कारण समय का दुरुपयोग होता है। यदि हम सफल और असफल लोगों की सूची बनाएँ और उनकी दिनचर्या देखें, तो हम पाएँगे कि सफल लोगों ने समय का सदुपयोग किया था, वहीं असफल लोगों ने अपने समय का कहीं-न-कहीं दुरुपयोग किया था। जीवन में मनोरंजन की भी आवश्यकता होती है, इससे व्यक्ति मानसिक तनाव आदि से दूर होकर विश्राम पाता है। परन्तु यदि मनोरंजन इतना अधिक हो कि समय केवल मनोरंजन में ही व्यतीत हो जाए, तो उसे समय का दुरुपयोग ही कहेंगे, क्योंकि समय के दुरुपयोग से लक्ष्य का चिन्तन ओझल हो जाता है। बुरी संगति में रहने पर हमारे समय का बहुत दुरुपयोग होता है, क्योंकि बुरी संगति से हमें कुछ लाभ नहीं होता, पर वह अवांछनीय कार्यों में हमारे समय को नष्ट कर देता है। जो समय एक बार चला जाता है वह फिर वापस नहीं आता। अत: हमें समय का यथासम्भव सदुपयोग करना चाहिए। समय का सदुपयोग वह अनमोल चाबी है, जो सफलता के द्वार खोलता है। अत: हमें अपनी एक नियमित दिनचर्या बनानी चाहिए और उसका यथासम्भव पालन करना चाहिए।

योजना का अभाव – बच्चे जब ५ वर्ष के हो जाते हैं, तो माता-पिता उन्हें पाठशाला में ले जाकर पहली कक्षा में भर्ती करवा देते हैं। इसके बाद वे प्रत्येक वर्ष उत्तीर्ण होकर अगली कक्षा में जाने लगते हैं। दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी, इसी प्रकार वे १२वीं कक्षा तक पहुँच जाते हैं। पर इसके बाद वे संशय में पड़ जाते हैं कि वे क्या करें। इसके बाद वे किसी प्रकार स्नातक में प्रवेश ले लेते हैं। स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद यह सोचते हैं कि अब वे क्या करेंगे। पर ऐसी स्थिति में वे कुछ नहीं कर पाते, क्योंकि उन्होंने इसके लिए कोई योजना नहीं बनाई थी। वास्तव में प्रारम्भ से स्नातक तक कोई योजना ही नहीं थी कि भविष्य में क्या करना है। न विद्यार्थी इसके विषय में सोचते हैं और न ही अभिभावक। इसी योजना के अभाव में वे बेरोजगार हो जाते हैं। पढ़ाई हो या व्यवसाय या अन्य कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य, इसके लिए हमें एक योजना की आवश्यकता होती है। बिना किसी योजना के एक ही ढर्रे पर चलते रहने से कभी सफलता नहीं मिलती। वास्तव में जब संकट का समय आ जाता है, तब सोचने से कुछ नहीं होता। इसके लिए तो हमें पहले से ही योजना बनानी चाहिए। जो कार्य योजनाबद्ध ढंग से प्रारम्भ होता है, उसकी सफलता निश्चित होती है। जब प्यास लगे, तब कुँआ खोदने से कोई लाभ नहीं होता। इसके लिए तो प्यास लगने से पूर्व ही कुआँ खोदकर तैयार रखना चाहिए। यदि हम कोई कार्य योजनाबद्ध ढंग से करें, तो वह कार्य कम शक्ति और कम समय में ही सुचारु रूप से चलने लगता है और हम सफलता की ओर अग्रसर होते हैं।

अव्यवहारिक प्रयास – एक युवक IPS की नौकरी के लिए तैयारी कर रहा था। तीन वर्षों तक उसने परीक्षाएँ दी, पर उत्तीर्ण नहीं हो सका। वह समझ चुका था कि यह उसकी क्षमता से परे है। उसे आईपीएस से कम स्तर की नौकरियाँ मिल रही थीं, पर वह अपने अभिमान को बनाए रखने के लिए मात्र आईपीएस की तैयारी करता रहा और कई वर्ष पश्चात् भी वह सफल न हो सका। ऊँचे लक्ष्य रखना बहुत अच्छी बात है, पर अपनी क्षमताओं को पहचानना और उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है अपने लक्ष्य को पाने के लिए प्रयास करना। हमारी असफलता के पीछे कहीं ऐसा तो नहीं कि हमने अपनी रुचि और क्षमता से विपरीत कार्य का चयन कर लिया है। और दिन-रात हम लोगों से कहते फिरें कि हम तो दिन-रात परिश्रम करते हैं, पर सफल नहीं हो रहे हैं। यदि कोल्हू का बैल यह सोचे कि वह ऐसे ही चलते-चलते एक दिन अपने गन्तव्य तक पहुँचेगा, तो ऐसा कभी सम्भव नहीं होगा। जब हम लक्ष्य, क्षमता और प्रयास के बीच व्यावहारिक नहीं होते, तब हम असफल हो जाते हैं। **(क्रमशः)**

प्रश्नोपनिषद् (११)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति।।१४।।

अन्वयार्थ – **अन्नम् वै** अन्न ही **प्रजापतिः** प्रजापति है; **ततः ह वै** इस अन्न से ही **तत्** वह (प्रसिद्ध) **रेतः** शुक्र (उत्पन्न होता है); **तस्मात्** उससे **इमाः** (मनुष्य आदि) ये समस्त **प्रजाः** प्राणीगण **प्रजायन्ते इति** जन्म लेते हैं।

भावार्थ – अन्न ही प्रजापति है; इस अन्न से ही वह (प्रसिद्ध) शुक्र (उत्पन्न होता है); उससे (मनुष्य आदि) ये समस्त प्राणीगण जन्म लेते हैं।

भाष्य – एवं क्रमेण परिणम्य तत् - अन्नं वै प्रजापतिः। कथम्? ततः तस्माद्-ह वै रेतः नृबीजं तत् प्रजा-कारणं तस्मात् योषिति सिक्तात् इमाः मनुष्य-आदि-लक्षणाः प्रजाः प्रजायन्ते।

भाष्यार्थ – इस प्रकार क्रमशः (अन्नरूप में) परिणत होने से, वह अन्न ही प्रजापति है। कैसे? उस (अन्न) से ही मनुष्य में वह बीज उत्पन्न होता है, जो उसकी सन्तान का कारण है, जिसके स्त्री में सिंचित् किये जाने पर ये सारे मनुष्य आदि रूपी प्राणी उत्पन्न होते हैं।

यत् पृष्टं कुतो ह वै प्रजाः प्रजायन्ते इति। तत् एवं चन्द्र-आदित्य-मिथुन-आदि-क्रमेण अहो-रात्र-अन्तेन अन्न-असृग्-रेतो-द्वारेण इमाः प्रजाः प्रजायन्ते इति निर्णीतम्।।

(कबन्धी द्वारा) जो पूछा गया था कि ये (सारे) प्राणी किससे उत्पन्न होते हैं? उसके उत्तर में, इस (उपरोक्त) प्रकार बताया गया कि किस प्रकार चन्द्र-आदित्य की जोड़ी से आरम्भ करके क्रमशः दिन-रात से अन्त करके, उसके बाद अन्न, रक्त, रेतस् के क्रम से होते हुए ये सारे जीव उत्पन्न होते हैं; इस प्रकार यह समाधान हुआ।।१४।।

उपासना रूप उपरोक्त विधान का फल

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते। तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।।१५।।

अन्वयार्थ – **तत् अतः ये ह वै** जो भी लोग, जो सभी गृहस्थ **तत्** उपरोक्त **प्रजापति-व्रतम्** प्रजापति-व्रत (ऋतुकाल में भार्या-गमन) का **चरन्ति** पालन करते हैं; **ते** वे **मिथुनम्** पुत्र तथा पुत्री **उत्पादयन्ते** उत्पन्न करते हैं। (इनमें से) **येषाम्** जिन लोगों में **तपः** (स्नातक-व्रत आदि) तप, **ब्रह्मचर्यम्** ऋतुकाल के अतिरिक्त अन्य समय मैथुन से विरति (होती है); **येषु** जिन लोगों में **सत्यम्** मिथ्या-वर्जन **प्रतिष्ठितम्** सुप्रतिष्ठित है; **तेषाम्** उनके लिये **एव** ही **एषः** यह **ब्रह्मलोकः** पितृयान-रूप चन्द्रलोक है।

भावार्थ – अतः जो भी लोग, जो सभी गृहस्थ उपरोक्त प्रजापति-व्रत (ऋतुकाल में भार्या-गमन) का पालन करते हैं; वे पुत्र तथा पुत्री उत्पन्न करते हैं। (इनमें से) जिन लोगों में (स्नातक-व्रत आदि) तप, ऋतुकाल के अतिरिक्त अन्य समय मैथुन से विरति (होती है); जिन लोगों में मिथ्या-वर्जन सुप्रतिष्ठित है; उनके लिये ही यह पितृयान-रूप चन्द्रलोक है।

भाष्य – तत् अत्र एवं सति ये गृहस्थाः – 'ह वै' इति प्रसिद्ध-स्मरणार्थौ निपातौ – तत् प्रजापतेः व्रतं प्रजापति-व्रतम् ऋतौ भार्या-गमनं चरन्ति कुर्वन्ति तेषां दृष्ट-फलम् इदम्। किम्? ते मिथुनं पुत्रं दुहितरं च उत्पादयन्ते।

भाष्यार्थ – ऐसा होने से, जो गृहस्थ लोग – 'ह' 'वै' ये दोनों निपात् (अव्यय) प्रसिद्धि के द्योतक हैं – उस प्रजापति-व्रत का आचरण करते हैं, तदनुसार ऋतुकाल में भार्या-गमन करते हैं, उनके लिये दृष्ट (तात्कालिक) फल यह है। क्या है? वे पुत्र और पुत्री को पैदा करते हैं।

अदृष्टं च फलम् इष्टापूर्त-दत्त-कारिणां तेषाम् एव एष यः चान्द्रमसः ब्रह्मलोकः पितृयाण-लक्षणः येषां तपः

शेष भाग पृष्ठ १८६ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०२)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२६-०३-१९६४

प्रात:काल भ्रमण करते समय महाराज ने देखा कि भण्डारी वरेण्यानन्द महाराज चुपचाप एक कोने में खड़े हैं।

महाराज – साधु के लिए तीन रास्ते खुले हैं – १. तीव्र वैराग्यवान – जो ध्यान-चिन्तन को लेकर जीवन बिताते हैं। २. भक्त – पूजा, जपमाला, दर्शन, गान-कीर्तन। ३. परोपकारी। बात यह है कि कुछ भी लेकर मतवाला रहना होगा।

कक्ष में वापस आकर गीता के सत्रहवें अध्याय का पाठ हो रहा है।

महाराज – श्रद्धा ... बहुत आवश्यक है। मुझे तो भय लगता है कि टीका-भाष्य केवल अग्निहोत्र की बात कहती है। किन्तु श्रद्धा – जैसा स्वामीजी ने कहा है, सभी बातों में आवश्यक है। जिसको जिस विषय में उन्नति होने का बोध होगा, उसी विषय में उसकी एकनिष्ठा का नाम ही श्रद्धा है।

गीता की बातें सुनने से सचमुच ही लगता है कि भगवान कह रहे हैं। भगवान ने श्लोक के रूप में कहा है। युगों-युगों से सिद्धपुरुषों ने भगवान के निर्दिष्ट पथ पर चलते हुए जो सब भाव पाया है, वही किसी उपयुक्त व्यक्ति की लेखनी या मन द्वारा गृहीत हुआ है। पहले यह श्रुति थी, इसके अतिरिक्त व्यासदेव भी श्रीकृष्ण की बातों को लिपिबद्ध कर सकते हैं। बाइबिल पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि (सेंट) पॉल आदि सचमुच ही ऋषि थे। कुरान की बातें भी कितनी सुन्दर हैं ! एक मुल्ला ने व्याख्या करके कहा था – मेरे अल्लाह का कोई साझेदार नहीं है, ऊँचा व्यक्ति भी नहीं। ठीक बात है, भागवत में भी है – असमोर्ध्व। बांग्लादेश में बात-बात में हरि, हरि, दुर्गा, दुर्गा और यहाँ राम, राम। मुसलमान लोग कहते हैं, अल्लाह, अल्लाह।

'संन्यास और उसका साधन' सम्बन्ध में जो सब तुमने लिख रखा है – मैं सन्तुष्ट हूँ। किन्तु राजयोग के बारे में काम की बात मानो कुछ दबा दी गई है। याद आता है कि गो... के लिये मैंने लिखा था कि इच्छापूर्वक ध्यान के साथ कर्म को प्रविष्ट नहीं कराकर ध्यान को मैंने थोड़ा महत्त्व दिया था। देखते तो हो कि वह खूब कर्मठ है ! सचमुच ही, कर्म को पूरी तरह छोड़ा नहीं जा सकता। गीता में ही है – 'युक्ताहारविहारस्य ...।' तीनों ही योग अन्योन्याश्रित हैं। माँ जब भोजन पकाती है, तब माँ का मन बच्चे की ओर नहीं रहता, यह बात सत्य है, यद्यपि मन भोजन पकाने में ही रहता है, तथापि उसमें यही उद्देश्य अन्तर्निहित रहता है कि बच्चा भोजन करेगा, कम-से-कम माँ का मन अन्य विषय में नहीं जाता। अर्थात् भगवान की पूजा के भाव से कर्म करने पर मन भगवान से वियुक्त नहीं होता। युक्त नहीं रहने पर भी इसी से धीरे-धीरे मन उच्च स्तर पर उठेगा। कोई-कोई लोग गीता को कर्मयोग की पुस्तक कहते हैं। असली बात यह है कि योग नहीं होने पर किसी भी कार्य में मन नहीं लग पाता, केवल ऐहिक सुखभोग हो सकता है। दी... पंडित और रा... महाराज पक्के ब्राह्मण हैं, किन्तु 'सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ' – ये लोग मुक्ति के लिये परिश्रम नहीं करना चाहते।

कल मोक्षदा बाबू ने कहा था कि धर्मेशानन्द महाराज ने कहा है, ''एकमात्र स्वमीजी में ही तीव्रवैराग्य था, हम सभी का मन्द वैराग्य है।''

महाराज – किसने कहा? यह बात ठीक नहीं है। स्वामीजी का किससे वैराग्य हुआ? उनकी किस चीज में आसक्ति थी कि उससे वैराग्य हुआ? वे तो ध्यानसिद्ध ऋषि हैं, उन्हें जन्म से ही ज्योति-दर्शन होता था।

दिल्ली से रा... नामक एक ब्रह्मचारी आए हैं, जिनका पूर्वाश्रम कानपुर में है।

महाराज – इसे पाकर संघ धन्य हो गया है। देखो, इतने

वर्षों में उत्तर प्रदेश से एक भी नवयुवक नहीं आया। लगता है यही पहला है। किन्तु आँखें, थोड़ी भूरी या पीले रंग की हैं। बड़ा संशयी है, खूब कष्ट पाता है। वि... को अच्छी तरह से एक पत्र लिख दूँगा। उसके हाथों के रोम सफेद हैं, संशयी रहता है। किन्तु समय कट गया है। उसने ठाकुर को ग्रहण कर लिया है। ठाकुर के चिन्तन से सब दोष चले जाते हैं। किन्तु वह बड़ा रजोगुणी है। मेरे एक निर्देश देने पर वह दस बातें सुना देता है, बातों को सजाकर-बनाकर कह भी सकता है। इस नवयुवक में सारतत्त्व है, थोड़ी सही दिशा मिलने पर कार्य के योग्य व्यक्ति बन जाएगा।

२६-०३-१९६४

आज भोर में नि... घर से चला आया है।

गत रविवार को उसके पिता उसे बलपूर्वक घर लेकर चले गए थे। उसने घर में अनशन कर दिया था। सुबह मिलते ही –

महाराज – आज हमलोगों का बड़ा शुभ दिन है – कैसा उत्सव का दिन है ! अब तुम ठीक-ठीक पक्के हो गए हो। उससे शुद्ध चिन्तन और शुद्ध कर्म की बातें कहने से कैसा होता? इसे आज खूब खिलाने की जरूरत है। देखा तो, इस नवयुवक में कैसा वैराग्य है ! किसने कहा कि हमलोगों में वैराग्य नहीं है ! अब एक (मन) की दया होने से ही सब हो जाएगा। किन्तु अब उसका और क्या दायित्व है? अब संघ का दायित्व है।

पूर्वाह्न दस बजे सुनील और सेवक बैठे हैं, महाराज पास ही सोए हुए हैं।

महाराज – आज मठ में भण्डारा है – सुषमा (साध्वी) की बातें बहुत याद आ रही हैं। पहले वे सब लड़कियाँ विशुद्धानन्दजी महाराज के पास जाती थीं। वे नहीं हैं, मैं भी नहीं हूँ। एकमात्र प्रभु महाराज और भरत महाराज हैं। सुना है, मेरे पत्र पर चर्चा करते हैं। किन्तु जानने से कुछ नहीं होता। शरीर, प्राण, मन को ज्ञानोपयोगी बनाने के लिए तैयार करना होगा। किन्तु मैं क्यों कहता हूँ? इसलिए कि सुनते-सुनते यदि किसी के मन में करने की इच्छा हो, तो उसकी शुभेच्छा मेरे ऊपर पड़ेगी, उससे मेरा कल्याण होगा।

दोपहर के भोजन के उपरान्त ही 'शुद्ध चिन्तन' और 'शुद्ध कर्म' सुनने के लिये नि... आए।

महाराज – मैं इसे कभी भी 'गणेश' कहकर नहीं पुकारता, नि... कहता हूँ, अबसे इसका नाम होगा – 'हारानिधि'। अच्छा, अब बताओ कि माता-पिता ने क्या कहा, क्या खिलाया? तुम लोग तो बहुत आनन्दित हो रहो हो – अहा ! एक बार उसके माता-पिता के कष्ट की बात को सोचकर तो देखो। उन लोगों के मन की क्या दशा होगी! कोई-कोई ऐसे हैं कि माता-पिता के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहते। मैं तो कहता हूँ न ! यदि सचमुच वैराग्य रहे, तो माता-पिता क्या कर सकते हैं? इसके अलावा माता-पिता की उपेक्षा करने से विनष्ट हो जाओगे। उनकी तो शिव-पार्वती के भाव से पूजा करनी चाहिए ! किन्तु साथ रहने से संन्यास जीवन नहीं रहता, इसीलिए त्याग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, घर-द्वार, माता-पिता का त्याग ही तो वैराग्य नहीं है, वैराग्य का अर्थ है – काम-कांचन का त्याग। मैं कहता हूँ – धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा त्याग करो। एक व्यक्ति को जबरदस्ती घर भेज दिया। वह वापस आकर बोला ...बहुत अच्छा हुआ, जाकर मैंने देखा कि सब लोग मानो कैसे छोटे-छोटे, कितने संकीर्ण हैं, अब वहाँ रहा नहीं जा सकता !

हमलोग साधु हैं, सभी प्राणियों में नारायण का दर्शन करेंगे, नौकर-चाकर तक में। हमारे पास और क्या है – केवल प्रेम ! बाहर के रोगियों को नारायण समझते हैं और नौकरों-चाकरों के साथ खराब व्यवहार? नौकर-चाकर सबको स्नेह-प्रेम करने पर वे सब क्यों वश में नहीं होंगे ! प्रेम ही तो हमारा लक्ष्य है। अब अन्य कोई उपाय नहीं है – जीव मात्र के प्रति नारायण-भाव।

मैं तारापद को उसके पिता से कहने के लिये कहता हूँ – जैसे बीमार होने पर डॉक्टर और मुकदमा होने पर वकील की बातें सुननी पड़ती हैं, वैसे ही धर्म के मामले में आपकी बात नहीं सुनूँगा, साधु की बात सुनूँगा।

साधुओं की मृत्यु से सुख भी होता है, दुख भी होता है – किन्तु किसी प्रियपात्र (प्रियजन) के मरने पर दुख होता है।

उन सबके चले जाने पर –

महाराज – अब समझा कि महाराज लोग हमलोगों से क्यों कुछ नहीं कहते, क्योंकि हमारे भीतर जिज्ञासा जाग्रत नहीं होती। इन लोगों ने शुद्ध चिन्तन की बातें सुनीं, किन्तु कोई कौतूहल नहीं उत्पन्न हुआ। पढ़ने पर भी नहीं समझेंगे। रा... अर्थ नहीं समझकर भी हड़बड़ी में कविता पढ़ता है।

शेष भाग पृष्ठ १८७ पर

अलमोड़ा की नन्दा देवी : एक जीवन्त आस्था

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

नन्दा देवी मन्दिर,अलमोड़ा

अलमोड़ा का नाम सुनते ही यहाँ की प्रसिद्ध माँ नन्दा देवी का स्मरण हो आता है, जो अपनी स्थापना के २०० वर्ष पूर्ण कर चुकी हैं। सन् १८१६ ई. में नन्दा देवी का वर्तमान मन्दिर बनवाया गया। १६७० में कुमाऊँ के चन्द्रवंशीय शासक राजा बाज बहादुर चंद ने बधाणगढ़ के किले से नन्दा देवी की स्वर्ण प्रतिमा लाकर अपने मल्ला महला (वर्तमान कलक्ट्रेट) में स्थापित कर अपनी कुल देवी के रूप में पूजन शुरु किया। १७१० में राजा जगत चंद ने २०० अशर्फियाँ गलाकर एक अन्य देवी प्रतिमा का निर्माण करवाया। जिस स्थान पर वर्तमान देवी मन्दिर स्थित है, उस स्थान पर १६९०-९१ में तत्कालीन नरेश उद्योत चंद ने दो शिव मंदिर उद्योत चंद्रेश्वर और पार्वती चंद्रेश्वर बनवाए।

१८१५ में अंग्रेजों ने नन्दा देवी की मूर्ति को मल्ला महल से वर्तमान नन्दा देवी परिसर में स्थानान्तरित कर दिया, लेकिन जब तत्कालीन कमिश्नर ट्रेल कुछ समय बाद हिमालय क्षेत्र में ट्रेकिंग को गये, तो अचानक उनकी आँखों की रोशनी कम हो गई। मान्यता है कि कुछ लोगों के परामर्श पर उन्होंने १८१६ ई. में नन्दा देवी का वर्तमान मन्दिर बनवाया और माँ की मूर्ति विधिवत् प्रतिष्ठित करवाई। तब से मन्दिर परिसर में प्रतिवर्ष भाद्र माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मेले का आयोजन बड़े धूमधाम व आस्था से किया जाने लगा। मेले में चन्द्रवंशीय पूजन कार्यक्रमों को सम्पन्न कर माँ नन्दा व सुनन्दा की प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता है। सारा नगर बड़ी आस्था से एक सप्ताह तक इस सांस्कृतिक उत्सव में भाग लेता है। अन्त में माँ के डोले की नगर में परिक्रमा के उपरान्त मूर्तियों का विसर्जन कोसी नदी में किया जाता है।

प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में शिव की अर्धांगिनी भगवती पार्वती को माँ नन्दा माना गया है। कुमाऊँ में प्रचलित नन्दा जागर में नन्दा देवी को हिमालय पुत्री के रूप में तथा गढ़वाल में बहिन-बेटी के रूप में मान्यता दी गई है। जागर में भगवती इस अंचल को अपना मायका बताती हुई भिटोली (भेंट) की माँग स्थानीय लोगों से करती हैं। अपनी मायके में आई नन्दा का पीछा महिषासुर करता है। महिष दैत्य की सेना का संहार करके नन्दा देवी उसका भी वध कर देती हैं।

अन्त में विश्राम हेतु नन्दा पर्वत चली जाती है। स्मरण रहे कि नन्दा देवी पर्वत शिखर उत्तराखण्ड हिमालय क्षेत्र का सर्वोच्च शिखर है। नन्दा देवी को उत्तराखण्ड हिमालय की संरक्षक देवी माना जाता है। नन्दा देवी का पश्चिमी शिखर माँ नन्दा देवी (७८१६ मीटर) तथा पूर्वी शिखर (७४३४ मी.) माँ सुनन्दा के नाम से जाना जाता है।

नन्दा देवी का यह परिसर कुमाऊँ के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक के साथ राजनैतिक चेतना का भी केन्द्र रहा है। १८१५ में यहाँ गोरखाओं का अधिकार था, जिन्हें अंग्रेजों के हाथ पराजित होना पड़ा था। अलमोड़ा नगर पर अधिकार करने के लिये अंग्रेजों ने इसी परिसर में अपनी तोपों को जमाया। यहीं से गोरखों के लाल मंडी किले पर अन्तिम आक्रमण कर नगर को अपने अधिकार में ले लिया था। फिर अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी के संघर्ष में १९१३ में पहली सभा इसी परिसर में हुई थी। इसके बाद १९२२ में मोतीलाल नेहरू, १९३० में बद्रीदत्त पाण्डेय, १९३१ में पं. जवाहरलाल नेहरू ने इसी प्रांगण में जन-जागरण किया था और झण्डा फहराया था। १९३५ में पं. गोविन्दबल्लभ पंत जी का यहीं सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था और अनेक राष्ट्रीय नेताओं के व्याख्यान हुए थे।

इस प्रकार नन्दा देवी मन्दिर और यह परिसर राष्ट्रीय जन-चेतना व सांस्कृतिक धरोहर के उन्नयन का जीवन्त प्रतीक कहा जा सकता है। इसके प्रति प्रत्येक श्रद्धालु की अटूट आस्था व्यक्त होती है और ऐसा हो भी क्यों नहीं, स्वामी विवेकानन्द ने अपनी दूसरी अलमोड़ा यात्रा में १८९७ में इसी नगर में खड़े होकर अपने अलमोड़ा अभिनन्दन के उत्तर में कहा था – यह स्थान हमारे पूर्वजों का स्वप्न देश है, जिसमें भारत-जननी श्रीपार्वतीजी ने जन्म लिया था। यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्य-पिपासु अपने जीवन-काल के अन्तिम दिन व्यतीत करना चाहता है।○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (१६)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

कर्मफल समर्पण की व्यावहारिक विधि

कर्मफल समर्पण की विधि यह है कि जब हम कोई क्रिया करते हैं, तो उस क्रिया के प्रारम्भ में भगवान का स्मरण कर लें, क्रिया के बीच में थोड़ा-सा अवकाश मिला, तो उनका स्मरण कर लें और क्रिया जिस समय समाप्त होती है, उनका चिंतन कर लें – प्रभो ! तुम्हारी कृपा से मैं यह कर्म करने में समर्थ हो रहा हूँ। तुम्हारी कृपा से मैंने यह क्रिया सम्पन्न की। इतना-सा चिन्तन हमने किसी क्रिया के साथ किया, समझ लीजिए कि वह क्रिया भगवदर्पित हो जाती है, ईश्वर समर्पित हो जाती है। इस क्रिया का किसी प्रकार का बन्धनकारक तत्त्व हम पर आ करके नहीं लगता, यह भगवान का कहना है। उन कर्मों को भगवान के चरणों में सौंपने का एक तरीका है, लोग पूछते हैं कि वे कर्मों को कैसे सौंपे? ठीक है, हम रसोई बना रहे हैं, तो रसोई बनाने के कर्म को हम भगवान को कैसे सौंपे? उसके सौंपने का भाव यह है कि रसोई का कर्म हमने शुरु किया, २-३ सेकेण्ड के लिए हमने मन में एक चिंतन कर लिया कि प्रभु यह रसोई का कार्य तुम्हारी ही प्रेरणा से हो रहा है। तुमने ही शक्ति दी है अंगों को और ये अंग रसोई का कार्य इसलिए कर रहे हैं कि तुम्हें भोग देने के लिए तुम्हारा नैवेद्य तैयार करें। जिस समय रसोई तैयार हो जाये, नैवेद्य अर्पण कर कहें कि प्रभु यह रसोई तुम्हें ही समर्पित है। उसके बाद हम लेते हैं प्रसाद। यह जो प्रसाद लेने का तरीका है, वह मानो हमने रसोई को ही भगवान को समर्पित कर दिया।

जैसे बनाने की क्रिया समर्पित होती है, उसी प्रकार खाने की क्रिया भी समर्पित होती है। सामान्यत: कई घरों में भोजन के पहले पाठ करते हैं –

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

अन्य कोई श्लोक भी कहते हैं, जैसे –

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

इस प्रकार के पाठ का तात्पर्य क्या है? अगर उस श्लोक के अर्थ का थोड़ा-सा चिंतन मन के साथ योग हो जाय, तो वह खाने की जो क्रिया होगी, वह भी भगवत समर्पित हो जाती है। मानो यदश्नासि, तू जो कुछ खाता है, वह मुझे समर्पित कर दे। हम जो भोग देते हैं, वह एक प्रतीक है। जैसे कई लोग इस बात के अभ्यस्त होते हैं कि थाली में जो कुछ भी भोज्य पदार्थ है, उसमें से एक छोटा सा टुकड़ा उठाएँगे और बाहर रखेंगे, मानो वे देव को अर्पित कर रहे हों और फिर जल से अभिसिंचित करेंगे। यह प्रतीक है। इस प्रकार समर्पण करने की क्रिया है, अब भोग लगाने की आवश्यकता नहीं। कोई सोच सकता है कि यदि हम ट्रेन में जा रहे हैं और उस समय खाने बैठे हों, तो जल है नहीं हाथ में, आचमन कैसे करेंगे और समर्पण की क्रिया कैसे सम्पन्न होगी? उस समय मानसिक रूप से समर्पण हो सकता है। हम खाने बैठे और मानसिक रूप से हम कह सकते हैं – प्रभो ! यह जो कुछ खाने मैं जा रहा हूँ, वह पहले मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ। यह जो मेरे भीतर में वैश्वानर अग्नि है, तुम जो वैश्वानर अग्नि के रूप में यहाँ पर प्रकट हो वह वैश्वानर अग्नि मेरे पेट के भोजन को पचाती है। मैं यहाँ पर प्रथम ग्रास इसलिए लेता हूँ कि वह

वैश्वानर अग्नि जो तुम्हारा प्रतीक है, जो तुम्हारा रूप है, प्रभो वह तृप्त हो। ऐसी भावना के द्वारा हर क्रिया के साथ ऐसा करना हो, तो मन के साथ वहाँ हर समय जूझना पड़ता है। हम कहेंगे कि हाँ जरुर जूझना पड़ता है, जैसे खाने के समय मन कहीं न कहीं तो रहेगा ही। अगर इस प्रकार का चिंतन न करें, तो मालूम नहीं मन कहाँ-कहाँ घूमता रहेगा।

कर्मफल समर्पण से मन पर लगाम

मन कहीं चुप तो बैठ करके रहता नहीं। इसी मन को, प्रमत्त हाथी के समान हमें धीरे-धीरे अंकुश के सहारे ठीक रास्ते पर लाना पड़ता है और ऐसा अगर अभ्यास पड़ गया, तो सच मानिए फिर यह प्रमत्त हाथी भी आपके वश में हो जाता है। आप जैसा चाहें मन में चिंतन की धारा उठा सकते हैं। पर इसके लिए हर छोटी-छोटी क्रिया में मन पर संयम बरतना होगा। आप कहेंगे यह छोटी-सी बात है, इस छोटी-छोटी क्रिया में भगवान को, ईश्वर को क्या स्मरण करना? तो भगवान अर्जुन से कहते हैं – नहीं, अर्जुन ! छोटी से छोटी क्रिया को भी जिस समय तू भगवत्समर्पित बुद्धि से करने लगेगा, ईश्वर को समर्पित करेगा, तो धीरे-धीरे तेरे मन में इस प्रकार की शक्ति आएगी, जिससे तू मन को पकड़ने में समर्थ होगा। यह जो प्रमथनशील स्वभाव वाला मन है, अर्जुन जिसके सम्बन्ध में कहता है –

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

यह मन इस प्रकार से प्रमथनशील स्वभाव वाला है प्रभो ! मैं तो इसे पकड़ना वायु को पकड़ने के समान दुरूह मानता हूँ। हम सभी जानते हैं कि मन को पकड़ना इतना ही कठिन है। पर भगवान कृष्ण कहते हैं, छोटी-छोटी क्रियाओं को समर्पित करते हुए हम मानो मन को पकड़ने का तरीका जान लेते हैं। भगवान कहते हैं – तू जो कुछ भी करता है, मुझे समर्पित कर। सोचिए, स्नान के लिए मैं जाता हूँ, तो मेरे भीतर का जो ईश्वर है, मैं उसे अभिषेक कर रहा हूँ, स्नान करा रहा हूँ। यह स्नान भी मानो भगवान की पूजा है। मैं स्नान कर रहा हूँ, ताकि स्नान से शुद्ध हो करके तुम्हारी पूजा में बैठूँगा, तुम्हारी अर्चना करूँगा, यह भक्त का भाव है। जो विचार-प्रधान है, वह सोचे कि स्नान करते हुए मैं उसी ब्रह्म को या उसी शिव को जो मेरे भीतर में विराजमान है, इस अभिषेक से तृप्त कर रहा हूँ। स्नान करना मानो उनका अभिषेक करना है। यह विचारात्मक भाव हो सकता है। जो भाव जिसको अच्छा लगे, वह उस भाव से उस क्रिया को समर्पित कर सकता है।

यत्करोषि यदश्नासि अर्थात् भगवान के लिए जो कुछ भी करता है, वह भी तू अर्पित कर दे। भगवान की पूजा को भी भगवान को अर्पित करना, इसका तात्पर्य क्या है? अर्थात् जब हम भगवान की पूजा करते हैं, तो उस पूजा का फल बहुत से लोग अपने लिए ले लेना चाहते हैं। मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ प्रभो ! तुम इस पूजा का फल मुझे दे दो। अर्जुन से कहते हैं भगवान – अर्जुन ! इस प्रकार जो पूजा करता है, जो पूजा के फल को स्वयं लेना चाहता है, वह इस क्रिया से बँध जाता है।

कर्मफल के समर्पण से बन्धन-मुक्ति

यह क्रिया कितनी ऊँची क्रिया है, कितना उत्कृष्ट सोपान है। हम भगवान की आराधना को बहुत उत्तम कर्म कहते हैं, पर यह उत्तम कर्म भी बाँधने में कम समर्थ नहीं है। यह भी हमें उसी प्रकार जकड़ लेता है, जैसे अन्य क्रियाएँ जकड़ लेती हैं। जब हम पूजा करते हैं, तो कैसे उस पूजा के फल को भगवान को समर्पित करें? मेरी पूजा से प्रभु तुम ही खुश हो, तुम प्रसन्न हो। तुम्हारी प्रसन्नता ही बस हमारा एकमात्र लक्ष्य है, यदि तुम इससे प्रसन्न होते हो प्रभो ! तो हमारी पूजा सार्थक हो गयी। मैं इसलिए पूजा करता हूँ, ताकि तुम्हारी मुझपर कृपा हो, बस मैं तुम्हारी कृपा चाहता हूँ और कुछ नहीं चाहता। यदि इस प्रकार की भावना से हमने पूजा को भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया, तो कहते हैं, वह पूजा का समर्पण हो गया।

भगवान कहते हैं, ददासि यत् – जो कुछ तू दान करता है अर्जुन ! वह सब कुछ मुझे समर्पित कर दो। दाता अपने दान के कारण बँध जाता है। जो दाता है, अपने दान का फल लेना चाहता है। वह देखता है, दानदाताओं की सूची में मेरा नाम आया या नहीं, अखबारों में प्रकाशित हुआ या नहीं? लोग मुझे दानी कहते हैं या नहीं? यदि देखा कि अखबार में उसका नाम नहीं आया, तो दुखी हो जाता है। दान देकर शुद्ध कर्म उसने किया, सुन्दर कर्म किया, पर यह सुन्दर कर्म, यह पुण्य का कर्म, यह भी उसे बाँधने में समर्थ होता है और इस प्रकार वह दानरूपी कर्म से बँध जाता है। भगवान से क्या कहना है – भगवन् ! तुम्हारी प्रीति के लिए मैं यह कर्म करता हूँ, इस दान से तुम संतृप्त होओ। यह कर्म मेरे भीतर की संकीर्णता को दूर करने में समर्थ हो,

यह मेरे भीतर में उदारता ला दे, इसलिए मैं यह दानरूप क्रिया करता हूँ। ऐसा करके हमने दान का कर्म भी भगवान को अर्पित कर दिया। भगवान कहते हैं यत्तपस्यसि - तू जो कुछ भी तपस्या करता है अर्जुन ! वह भी मुझे अर्पित कर दे। तपस्या माने ईश्वर को पाने के लिए जो हम तपस्या करते हैं, उसके पीछे में भी फल का भाव होता है। कई लोग ईश्वर को पाने के लिए नहीं, कई प्रकार की सिद्धि के लिए तपस्या करते हैं। संसार में हमारे भीतर कामनाएँ होती हैं, और वासनाएँ होती हैं। उनकी तृप्ति के लिए हम तपस्या करते हैं। कई लोग कितनी प्रकार की तपस्या करते हैं, कैसे तपस्या करते हैं? विद्यार्थी परीक्षा में अच्छी तरह से पास होने के लिए तपस्या करता है। कुमारी बालाएँ अच्छा घर और वर पाने के लिए तपस्या करती हैं। कुछ लोग तपस्या अच्छी नौकरी पाने के लिए करते हैं। कुछ लोग तपस्या केस मुकदमा जीतने के लिए करते हैं। कितने प्रकार की तपस्या लोग करते हैं ! भगवान कहते हैं – अर्जुन ! जिस समय तपस्या का फल धन नहीं होता, ऐश्वर्य नहीं होता, सत्ता नहीं होती, वर-घर नहीं होता, तपस्या का फल केवल मैं ही होता हूँ, समझ ले उस तपस्या से तू बन्धन में नहीं पड़ेगा। वह तपस्या तेरे दुख का कारण नहीं बनेगी और उस तपस्या से तू मुझे पाने का अधिकारी होगा।

तत्कुरुष्व मदर्पणम् – अर्जुन उन सभी कर्मों को मुझे अर्पित कर दो। जीवन का छोटे-से-छोटा कर्म भी समर्पण की बुद्धि से किया जा सकता है। हम झाड़ू लगाते हैं, पाखाना साफ करते हैं, इसको हम छोटा कर्म न मानें। यदि हम समर्पण-भाव से कर्म करते रहें, तो समझ लीजिए, झाड़ू लगाने का जो कर्म है, वह भी भगवान की पूजा बन जाता है। यदि हमने उसे भगवान को अर्पित कर दिया, तो उससे भगवान प्रसन्न होंगे। हमारी ऐसी भावना हो – प्रभु ! मैं यह साफ इसलिए किया करता हूँ कि तुम सर्वव्यापी हो प्रभो ! तुम रूप धारण करके यहाँ पर आ करके चला करते हो। जहाँ पर भक्त तुमको पुकारते हैं, वहाँ पर तुम आते हो ! तुम्हारे रास्ते में किसी प्रकार की धूल न हो, साफ-सुथरा सब बना रहे। इसलिए मैं यहाँ पर झाड़ू लगाता हूँ, इसे मैं साफ करता हूँ। साफ करने के पीछे थोड़ा-सा भगवद्-भाव यदि हो, तो फल की प्राप्ति कितनी सुन्दर होती है। चुटकी भर बारूद के चूर्ण में कितनी शक्ति होती है। उसकी शक्ति का हमें पता नहीं चलता, हमें पता तो तब चलता है, जब आग की एक छोटी-सी चिंगारी अगर बारूद के साथ मिल जाए और धमाका होता है। बारूद पड़ी हुई है, पता नहीं चलता कि इस बारूद में कोई ताकत है, वजन उसका मालूम नहीं पड़ता। अरे ! इतनी सी बारूद में कितना भला वजन भरा रहेगा, पर वह हमारे चीथड़े-चीथड़े कर देगी, वह बड़ी-से-बड़ी आलीशान इमारत को ध्वस्त करके रख देगी। उसके भीतर में कितनी शक्ति छिपी हुई थी, अग्नि के साथ संयुक्त होने से वह शक्ति प्रकट हो गई। कर्म के भीतर इसी प्रकार की शक्ति होती है, यह शक्ति हानिकारक और अत्यन्त लाभकारक भी होती है। हमारी भावना ही हानिकारक और लाभकारक शक्ति का निर्माण करती है। जिस समय हम कर्म में स्वार्थयुक्त भावना संयुक्त करते हैं, तो वही कर्म हमारे विनाश का कारण बनता है, हमें बाँधता है और उतनी ही तीव्रता से बाँधता है। यदि हमारे भीतर में समर्पण का भाव युक्त हो जाय, तो उतनी ही तीव्रता से वह हमारे बन्धनों को खण्डित करता है। भगवान अर्जुन से कहते हैं – जो कर्मबन्धन के रूप में ताकत प्रकट होती है, जब मुझे अर्पित करके साधक, भक्त कर्म करता है, तो वह स्खलित हो जाती है, छिन्न-भिन्न हो जाती है। वह जो कुछ करता है, उसे मुझे अर्पित करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ पूजा करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ तपस्या करता है, सब मुझे अर्पित कर देता है। कर्म से निकलने वाला शुभ और अशुभ का बन्धन जो मनुष्य को बाँध लेता है, वह सारा का सारा बन्धन कट जाता है। जैसे हम किसी को पीड़ित करते हैं, तो उसका फल अशुभ हुआ, वह जैसे बाँधता है, वैसे ही शुभ फल भी बाँधता है। एक यदि लोहे की जंजीर है, तो दूसरी सोने की जंजीर है। पर सोने की जंजीर भी मनुष्य को बाँधने में कम शक्तिशाली नहीं है, वह भी मनुष्य को उसी प्रकार बाँध सकती है, जिस प्रकार लोहे की जंजीर बाँध दिया करती है। अर्जुन ! इन दोनो प्रकारों की जंजीरों को तुम काटने में समर्थ हो सकोगे। कैसे? जब तुम कर्मों को भगवान को अर्पित कर दोगे, तो दोनों प्रकार के बन्धन कट जायेंगे। संन्यासयोगयुक्तात्मा – हर क्रिया के साथ भगवान से युक्त होने का भाव संन्यासयोग है। घर में रहते हुए, संसार में रहते हुए मनुष्य संन्यासयोग को कैसे पा सकता है, उसका रसायन भगवान यहाँ पर प्रस्तुत करते हैं। हर एक क्रिया को

शेष भाग पृष्ठ १८७ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (२८)

स्वामी अभयानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

रामकृष्ण मठ-मिशन में सम्मिलित होने के प्रथम दिन से ही स्वामी अभयानन्द जी (१८९०-१९८९) (भरत महाराज) के साथ घनिष्ठ-रूप से मिलने-जुलने का सुयोग मुझे मिला था। मन्दिर के सामने पुराने मिशन ऑफिस के नीचे तल्ला के पूर्व वाले कमरा में वे बैठते थे। देश-विदेश के गणमान्य व्यक्ति उनके पास आते थे। वे अल्पभाषी, बुद्धिमान, दूरदर्शी, समस्या एवं दुख-विपत्ति में शान्तचित्त व्यक्ति थे। यद्यपि उनको कभी शास्त्र पढ़ते या व्याख्यान देते हुए नहीं देखा; तथापि मठ में बैठे हुए ही वे कई संन्यासी तथा भक्तों के विभिन्न समस्याओं का समाधान कर दिया करते थे।

स्वामी अभयानन्द जी महाराज

उनके स्वयं के मुख से सुना हूँ कि उन्होंने किस प्रकार श्रीमाँ से दीक्षा प्राप्त की थी और उद्बोधन में रात्रि में जागकर शशी महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द जी) की सेवा की थी। शशी महाराज उन दिनों टी.बी. से कष्ट पा रहे थे। उद्बोधन में बिजली नहीं थी। उनके शरीर का जलन कम हो, इसलिए सेवकगण हाथ-पंखा से उनको हवा करते थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय छपाई का कागज हमेशा बाजार में नहीं मिलता था। 'प्रबुद्ध-भारत' पत्रिका उस समय मायावती से प्रकाशित होती थी और भरत महाराज वहाँ के कार्य की देखरेख करते थे। स्वामीजी द्वारा प्रतिष्ठित पत्रिका धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो, इसलिए वे मायावती से लखनऊ चले गये तथा वहाँ पर कागज की व्यवस्था करके, गधा के पीठ पर कागज को लादकर पुन: मायावती पैदल वापस आये। इन सब संन्यासियों के आत्मत्याग के कारण ही रामकृष्ण संघ महान हुआ है और एक बात सुना हूँ, स्वदेशी आन्दोलन के समय जवाहरलाल नेहरू जब जेल में थे, तब भरत महाराज उनको विभिन्न पुस्तकें खरीदकर भेजा करते थे। जेल में बैठकर ही नेहरूजी ने Discovery of India लिखी थी। परवर्तीकाल में देखा हूँ, श्रीमती इन्दिरा गाँधी कोलकाता आने पर महाराज का दर्शन करने आती थीं। एक बार बेलूड़ मठ में भी उनको देखा था। तदनन्दर पूजा के उपलक्ष्य में मुझे उनलोगों के लिए प्रसाद भेजने के लिए कहते।

जब वे बेलूड़ मठ के मैनेजर थे, तब साधु-भक्तों को बिना भोजन कराये स्वयं भोजन नहीं करते थे। भक्तों का जूता-चप्पल चोरी न हो, इसलिए सन्ध्यारती के समय वे मन्दिर के सामने टहलते रहते थे। उत्सव के समय मैं उनके कार्यालय के बरामदे में बैठकर दान स्वीकार करता था। प्रशिक्षण केन्द्र में रहते समय मैं वर्षाकाल और शीतकाल में स्वामीजी के शयनकक्ष में बैठकर जप-ध्यान करता था; क्योंकि एक कमरा में हम चार ब्रह्मचारी रहते थे, इससे वहाँ पर कोई एकान्तवास नहीं था। महाराज ने मुझे सभी विषयों में अबाध स्वाधीनता दी थी। महाराज मुझे अनेक कार्यों में उत्साहित करते थे।

स्वामीजी के शयनकक्ष में प्रियनाथ सिंह द्वारा निर्मित स्वामीजी का परिव्राजक काल का तैल-चित्र खराब हो गया था। मैंने कहा, "महाराज, देश-विदेश से लोग स्वामीजी का शयनकक्ष देखने के लिए आते हैं। स्वामीजी का एक बड़ा ध्यानमुद्रा का चित्र बैठाना चाहता हूँ।" उन्होंने अनुमति प्रदान की। मैंने स्वामीजी का ध्यान-मुद्रा का एक चित्र लेकर Bombay Photo से ३०" X ४०" साइज का चित्र बनवाकर उनके कमरे के उत्तर-पूर्व कोने में लगाया। परवर्तीकाल में इस चित्र के ऊपर अमेरिका से ठाकुर और श्रीमाँ का चित्र बनवाकर स्वामी प्रमेयानन्दजी के समय में लगाया गया था।

एक दिन भरत महाराज ने मुझसे कहा, ''सुनो, देश-विदेश से विख्यात व्यक्ति मठ में आते हैं। उनको केवल प्रसाद देता हूँ। उन लोगों को ठाकुर-स्वामीजी की कोई पुस्तक देना चाहता हूँ। तुम संकलित कर पुस्तक बनाओ। जितना रुपया लगेगा, उतना मैं दूँगा।'' १९७० ई. मैंने Ramakrishna and his Message by Swami Vivekananda और Swamiji and his Message by Sister Nivedita संकलन किया। East End Printers के मालिक प्रभात घोष ने उसे छाप दिया। इससे महाराज बहुत आनन्दित हुए।

१९७१ ई. में मेरे अमेरिका जाने के पूर्व उन्होंने मुझे अनेक व्यावहारिक उपदेश दिया था : ठाकुर-स्वामीजी का भाव-प्रचार करना। भाव के घर में चोरी न हो। मठ में जो पत्र प्रेषित करोगे, उसका एक प्रतिलिपि अपने पास रखना। पत्र में कोई भावातिरेक न हो, इससे हम निर्णय नहीं ले पाते हैं। पत्र लिखने के बाद उसे पढ़ना और देखना कि उसके प्रत्येक शब्द सत्य हैं कि नहीं, इत्यादि।

३१ मई, १९७१ ई. में मुम्बई के Gateway of India पर स्वामी हिरण्मयानन्द जी की देखरेख में स्वामीजी की विराट bronze से निर्मित मूर्ति की स्थापना हुई। प्रभु महाराज, भरत महाराज, सूर्य महाराज इत्यादि अनेक संन्यासीगण उपस्थित थे। भरत महाराज ने मुझे बहुत उत्साहित किया था। परवर्तीकाल में उनसे कई पत्राचार किया था। उन सब पत्रों के कुछ अंशों को उद्धृत कर रहा हूँ।

२६/०६/१९७१ : ''एक बात स्मरण रखना कि तुम लोगों को उपदेश दे रहे हो, यह भाव मन में जितना नहीं आये, उतना ही अच्छा है। परन्तु मन में यह भाव लाने का प्रयत्न करना कि तुम बहुत कुछ सीखने के लिए गये हो। तभी सही-सही उद्देश्य सफल होगा।''

०५/१०/१९७१, विजयादशमी : ''उस देश (अमेरिका) में तुम अभी-अभी ही गये हो। स्मरण रखना कि तुम्हारे लिए सीखने के लिए बहुत कुछ बाकी है। तुम शिक्षार्थी हो। स्वामीजी ने कहा है – 'मेरा धर्म सीखने का है।' ठाकुर ने भी कहा है, 'जब तक जीऊँ, तब तक सीखूँ।' ये बातें मन में बैठा लो। जीवन में इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।''

०८/०५/१९७५ : ''ठाकुर-श्रीमाँ को सम्बल करके जब संन्यासी होने के लिए घर से निकले हो, तब सभी परिस्थितियों में उनलोगों के ऊपर ही निर्भर रहकर, मन में उनका ही चिन्तन-मनन करते हुए आनन्द से जीवन व्यतीत करो। स्वामीजी ने अक्लान्त परिश्रम करके इस संघ का निर्माण किया है। उनका प्रथम उपदेश ही था पहले आज्ञापालन। जो स्वामीजी के इस निर्देश की उपेक्षा करके स्वेच्छा से चलने का प्रयत्न करत है, वह चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका कोई आध्यात्मिक कल्याण नहीं होगा।

''हमलोगों के जीवन का उद्देश्य आत्मज्ञान-लाभ है। कर्म उस उद्देश्य तक पहुँचाने के लिए निश्चय ही पालनीय पथ है। 'ठाकुर का कार्य', यही सबसे बड़ी बात है। इस देश में कार्य करो या उस देश में कार्य करो, उससे क्या आता-जाता है? वेदान्त के चरम सिद्धान्त अजर-अमर-अभय आत्मा के विषय में बताने के लिए अपने आप में इतना झिझक क्यों? कोई व्यक्तिगत आसक्ति होना तो हमारे लिए वांछनीय नहीं है। स्वामीजी ने जीवन का जो उद्देश्य दिखाया है, उसकी अभिव्यक्ति संन्यासियों के जीवन में होना आवश्यक है। स्वामीजी के पथ का ही अवलम्बन करना आवश्यक है। जो कार्य हो, जिस देश का कार्य हो, सब ठाकुर का है, यही स्मरण रखना होगा। किस बात की इतनी चिन्ता?

''तुमको ही लक्ष्य करके अकस्मात् इतनी बातें क्यों लिखा, यह प्रश्न कर सकते हो। मेरे मन में आया, लिख दिया। क्योंकि इस सत्य का पालन करना जैसा तुम्हारे लिए आवश्यक है, वैसा ही मेरे लिए तथा हम सभी के लिए भी उतना ही आवश्यक है।''

१६/०७/१९७६ : ''तुम्हारे पत्र से स्वामी प्रभवानन्द जी के शरीर-त्याग (०४/०७/१९७६) के विषय में विस्तृत विवरण पढ़कर सब समझ में आया। उनके चले जाने से तुमलोगों के बीच में जिस शुन्यता की सृष्टि हुई है, उसका मैं अच्छी तरह से अनुमान लगा पा रहा हूँ। फिर भी यह सत्य है कि टूट जाने से कार्य नहीं चलेगा। समस्त शक्ति के स्रोत ठाकुर हैं। वे सत्यस्वरूप, पवित्रतास्वरूप तथा त्यागीश्वर हैं, इसीलिए जहाँ पर सत्यनिष्ठा, त्याग, पवित्रता और संयम है, वहाँ पर वे विराजमान रहते हैं। उनकी शक्ति वहीं पर प्रकाशित होती है। वर्तमान परिस्थिति में तुम सभी संघबद्ध होकर, यदि एक साथ आदर्श के प्रति निष्ठा रखकर, उनको अपने जीवन में प्रस्फुटित करने का प्रयत्न करते हो, तो सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा। अपने अहंकार को थोड़ा-सा दबाकर रखने के लिए सभी को प्रयत्न करना

होगा, तभी परस्पर श्रद्धा-स्नेह तथा यथार्थ प्रेम अक्षुण्ण रहेगा और यही संघ-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।...

"हमारे असफल होने के कारण हैं – (१) निष्ठा का अभाव (२) भाव के घर में चोरी (३) मन-मुख को एक न करना। इसके फलस्वरूप अपने जीवन में तो हानि होती ही है, सर्वोपरि समष्टिभाव से संघ की भी हानि होती है। इसलिए आज्ञापालन की आवश्यकता है, जिससे संघ सुदृढ़ होता है और इसके न रहने से संघ दुर्बल हो जाता है। हमारे साधु-जीवन के गठन के लिए ही स्वामीजी ने आज्ञापालन को इतना अधिक महत्त्व दिया है।"

इन सब वरिष्ठ संन्यासियों का आत्मत्याग, संघ के प्रति प्रेम और निष्ठा हमारे लिए शिक्षणीय है। १९७७ ई. में मैं भारत वापस आया। भरत महाराज उस समय मठ के मैनेजर थे। मुझसे माँ के समान प्रश्न करते, "तुम्हारे रहने-खाने में कोई असुविधा तो नहीं हो रही है?" उन्होंने अपने कार्यालय में बैठकर मेरे साथ बहुत समय तक वार्तालाप किया। एक दिन स्वामी नित्यस्वरूपानन्द जी (चिन्ताहरण महाराज) ने भरत महाराज से कहा, "महाराज, ठाकुर ने जो १८८६ ई. से सूजी का खीर (पायस) खाना आरम्भ किया था, अभी भी उनको नित्य सूजी का खीर ही दिया जा रहा है। उनके मुँह में अभी बहुत अरुचि हो गयी है। बेलूड़ मठ में उनके भोग का मेन्यू बदलिए।" तब भरत महाराज ने कहा, "अच्छा, तो तुम्हारे साथ आजकल ठाकुर का इस सम्बन्ध में वार्तालाप हो रहा है। ठीक है, तो मेन्यू क्या होगा?" चिन्ताहरण महाराज ने विभिन्न प्रकार का मेन्यू बताया। वे जो पसन्द करते थे, वह सब बता दिया। मैं मठ के दो वरिष्ठ संन्यासी तथा श्रीमाँ के दो शिष्यों के बीच वार्तालाप को सुनकर हँसने लगा।

भरत महाराज ने निवेदिता के सम्बन्ध में कहा था, "कोलकाता से एक दिन सन्ध्या समय निवेदिता नाव से बेलूड़ मठ आयी थीं। वे सीधे पुराने ठाकुर-मन्दिर में गयीं। संघ के साथ सदा उनका आन्तरिक संयोग था। एक दूसरे दिन निवेदिता ने स्वामी प्रज्ञानन्द के सम्बन्ध में कहा था, 'मायावती में मैं उनके साथ थी। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। मठ-मिशन में उनके जैसा मौलिक चिन्तनशील संन्यासी बहुत बिरले हैं। उन्होंने 'भारतेर साधना' नामक पुस्तक लिखी थी।' "

ठाकुर ने कहा है, "अरे ! गुणीजनों का आदर करना चाहिए।" भरत महाराज को देखा था, वे ज्ञानी-गुणीजनों का बहुत आदर-सत्कार करते, भोजन कराते, खोज-खबर लेते और इस प्रकार उनको मठ-मिशन का भक्त बना देते थे।

इस प्रसंग में बेलूड़ मठ के मैनेजर बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द जी) की एक घटना याद आ रही है। उद्बोधन ऑफिस के ब्रह्मचारी गनेन ने कहा था, "बाबूराम महाराज ने मठ में होटल खोल दिया है। केवल भक्तों को प्रसाद देते हैं, इससे मठ घाटा में चल रहा है।" लोगों से यह बात सुनकर बाबूराम महाराज ने कहा, "गनेन बच्चा है। वह क्या जाने? मैं मठ में भक्तों को प्रसाद खिलाता हूँ, जिससे ठाकुर के प्रति उनलोगों की थोड़ी-सी भक्ति हो। उसी भक्ति की जोर से वे लोग उद्बोधन जाकर ठाकुर-स्वामीजी की पुस्तकें खरीदते हैं। ठाकुर के इस प्रसाद के गुण के कारण ही उद्बोधन में पुस्तकें विक्रय होती हैं।"

भरत महाराज को देखता था, उत्सव के समय नकूड़ का कड़ा पाक का सन्देश खरीदकर ठाकुर को भोग देते और देश-विदेश में भेजा करते थे। वे बेलूड़ मठ में माँ की तरह भक्तों की सेवा करते थे। साधुओं के अस्वस्थ होने पर उन्हें जिससे थोड़ा-सा दूध मिले, इस ओर महाराज की दृष्टि रहती थी। उनके लिए भक्तों की सेवा और पूजा एक थी।

कहा जाता है, जितना गोपन होता है, उतना ही शक्तिशाली होता है और जितना व्यक्त होता है, उतना ही कमजोर होता है। उनका व्यक्तिगत जीवन बहुत गुप्त देखा हूँ। अपने विषय में कुछ बोलते नहीं थे। वे ज्ञानी-गुणीजनों का बहुत आदर-सत्कार करते थे। मठ-मिशन में कोई समस्या आने पर वे परामर्शदाता का कार्य करते थे। दीर्घकाल तक रामकृष्ण संघ की सेवा करके वे स्मरणीय, अमर हो गये। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १७७ का शेष भाग

स्नातक-व्रत-आदीनि, <u>ब्रह्मचर्यम्</u> – ऋतौ अन्यत्र मैथुन-असमाचरणं ब्रह्मचर्यम्, <u>येषु</u> च <u>सत्यम्</u> अनृत-वर्जनं <u>प्रतिष्ठितम्</u> अव्यभिचारितया वर्तते नित्यम् एव॥१५॥

जो लोग इष्ट-पूर्त (यज्ञ तथा जनहित) और दान करते हैं और जिन लोगों (के आचरण) में सदैव – स्नातक आदि व्रत के रूप में तप; ऋतुकाल को छोड़कर मैथुन न करना रूप ब्रह्मचर्य; तथा झूठ का त्याग रूप सत्य – भलीभाँति स्थित रहता है, उन्हें – चन्द्रमा से सम्बन्धित पितृयान-नामक ब्रह्मलोक-रूप अदृष्ट फल मिलता है। **(क्रमशः)**

पक्षपातरहित न्याय राजधर्म कहलाय

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

एक बार तैमूरलंग के मन में यह जानने की इच्छा हुई कि क्या उसके राज्य में प्रजा सुखी है। जब उसने यही सवाल दरबारियों से किया, तो उनमें से एक वृद्ध दरबारी ने कहा, ''हुजूर यदि आप बुरा न मानें, तो आपको एक घटना सुनाना चाहता हूँ।'' बेहिचक बताओ, मैं बुरा नहीं मानूँगा। तैमूरलंग के बोलने पर वृद्ध ने बताना शुरू किया – एक किसान को जब खेत में हल चलाते समय जमीन में स्वर्ण भरा कलश मिला, तो वह उसे लेकर जमींदार के पास गया, जिससे उसने वह जमीन पट्टे पर ली थी। जमींदार ने कलश को यह कहकर लेने से मना किया कि वह कलश उसने नहीं गाड़ा था। इसलिये उसका वह मालिक नहीं है। दोनों में सुलह न हुई, तो वे राजा के पास गए। उस समय आपके दादा का शासन था। उन्होंने दोनों को आपस में बाँट लेने का सुझाव दिया। न मानने पर उन्होंने जमीन में गाड़ने को कहा। उनके देहान्त के बाद जमींदार के बेटे से किसान के बेटे ने जमीन जोतने के लिये पट्टे में ली। किसान के बेटे को वह कलश मिलने पर उसे जमींदार के बेटे को देने गया। उसके न लेने पर न राजा के पास निर्णय करने के लिए गए। उन्होंने भी दोनों के न मानने, पर फिर से जमीन में गाड़ने को कहा। संयोग देखिए कि उन दोनों का जल्दी निधन होने के बाद किसान के पोते ने जमींदार के पोते से वह जमीन पट्टे में ले ली। हल जोतते समय कलश मिलने पर पोते ने उसे देना चाहा। जमींदार के पोते ने भी लेने से इंकार किया। दोनों एक-दूसरे को लेने का आग्रह करने लगे। वहाँ से जा रहे एक सिपाही ने यह समझकर कि वे दोनों झगड़ रहे हैं, वह उन्हें आपके पास ले आया। आपने मामला जानने पर फैसला सुनाया कि यह कलश राजकीय सम्पत्ति है। इस पर राजा का हक बनता है। आपने उससे वह कलश ले लिया और दोनों सार्वजनिक स्थान पर झगड़ रहे थे, यह कारण बताकर उन्हें कारागार में डाल दिया। हुजूर, आप ही निर्णय ले सकते हैं कि किसके शासन में प्रजा सुखी थी।'' तैमूरलंग ने सुना तो उसे घटना का स्मरण हो आया। निर्मम होते हुए भी वृद्ध दरबारी को अभय देने के कारण कोई दण्ड नहीं दे सकता था। मजबूरी से किसान और जमींदार के पोतों को रिहा करने का आदेश देकर उनको कलश वापस कर उसे फिर से जमीन में गाड़ने को कहा।

सही न्याय देना राजा का कर्त्तव्य है। राजा के समक्ष कोई विवाद उपस्थित होने पर उसे चाहिए कि दोनों पक्षों की बात सुने और फिर फैसला सुनाए। न्याय करते समय उसे निष्पक्षता से निर्णय सुनाना चाहिए यही राजधर्म है। ○○○

पृष्ठ १७९ का शेष भाग

किन्तु ठाकुर का चिन्तन हो रहा है, कार्य सफल होगा।

रामगति महाराज ने वेदों के अनेक स्थानों से संग्रह करके वेदों के अंशविशेष में शूद्रों के अधिकार के सम्बन्ध में एक लेख लिखा है। एक व्यक्ति ने प्रसंगवश इसकी चर्चा की।

महाराज – साम्य अथवा समन्वय या समानता का कितना भी प्रयास क्यों न किया जाय, विषमता तो अवश्य थी। किन्तु इस युग में स्वामीजी द्वारा प्रचारित नारायण-भाव से सब विषमता, यहाँ तक कि विद्यार्थियों तक में भी दूर हो गई है। देह-मन-बुद्धि के क्षेत्र में रहने तक एक बाँध बनाकर अवश्य ही रखना होगा। अशुद्ध, असंयमी लोगों के साथ निर्बाध मेल-जोल से मेरा भी मन अशुद्ध होगा। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १८३ का शेष भाग

हम ईश्वर को पाने का साधन मान लेते हैं, हर एक क्रिया के साथ हम ईश्वर के साथ संयुक्त हो जाना चाहते हैं, उसी को संन्यासयोग के नाम से पुकारा गया है। संन्यास और योग ये दो शब्द हैं, संन्यास का अर्थ है कर्म के जो फल निकलते हैं, उन फलों का हमने संन्यास कर दिया, छोड़ दिया। योग किससे होता है? उस ईश्वर के साथ हमारा योग हो जाता है। ऐसा यह संन्यासयोग है अर्जुन ! कर्मों के फलों का संन्यास और ईश्वर के साथ युक्त हो जाना, इसी को संन्यासयोग कहते हैं। जब इस प्रकार तू ईश्वर से युक्त हो जाएगा, तो विमुक्तः – तू समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाएगा और मामुपैष्यसि – तू मुझे प्राप्त करेगा। **(क्रमशः)**

हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरि-नाम

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

महापुरुषगण कहते हैं संसार बहुत गहन है। उसे बदल नहीं सकते, समझ नहीं सकते। हमें स्वयं को ही बदलना है। संसार से किसी प्रकार की आशा हमें दुख ही देगी – आशा ही परमं दुखम्। आशा संसार की नहीं, भगवान की ही करनी चाहिए। हम संसार को बदलने का प्रयत्न करते हैं, पर संसार बदलेगा नहीं। अपने मन को बदलने से आप जैसा चाहते हैं, वैसा संसार दीखेगा। हमारे मन में पुराने बहुत जन्मों के संस्कार पड़े हैं। उन संस्कारों को दूर कर भगवान की ओर उन्मुख होना है। तब हम सुखी होंगे। हम सब सुख चाहते हैं। मन की अनुकूलता सुख है। मन की प्रतिकूलता दुख है। हमें फिर से संसार में न आना पड़े, ऐसा कर्म करें। भगवान की भक्ति करें। नाम-जप-संकीर्तन-भजन करें। महापुरुष लोग कहते हैं कि सारी समस्या तुम्हारी मन की ही है। मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है। हम जो चाहते हैं, वैसा नहीं होता, यही हमारे दुख का कारण है। हम सभी चाहते हैं कि स्वस्थ रहें, लेकिन ऐसा होता नहीं। इसके लिए हमें अपने व्यक्तित्व को देखना चाहिए, उसकी जाँच करनी चाहिए। हम जहाँ हैं, जैसे हैं, वैसी परिस्थिति में अपने मन को ढालकर भगवान का भजन करने का प्रयत्न करना चाहिए। सदा अपने मन की जाँच करते रहना चाहिए।

सहनशील व्यक्ति सुखी होता है। हमने बहुत सह लिया, तो हम बहुत सुख में रहेंगे। हारिये न हिम्मत, बिसारिए न हरिनाम। जाही विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये। जैसे भगवान रखें, वैसा रहना चाहिए। जहाँ जैसे भगवान हमें रखते हैं, वहाँ बहुत आनन्द में रहना चाहिए। हमें संसार को बदलने की कोशिश नहीं करना है। अपना मन बदलना है और जो नहीं होता है, उसके लिए भगवान के पास प्रार्थना करनी है।

जीवन में यदि सुखी रहना है, तो आज और अभी को देखना चाहिए। संसार में मन कभी अनुकूल नहीं रहेगा। मन तो परमात्मा में अनुकूल रहेगा। इसके लिए भगवान के पास प्रार्थना करिये। तभी जीवन में आनन्द आयेगा। हमने अपना संसार बना कर रखा है। अच्छी-बुरी ये सब हमारी ही कमाई है। संसार में जो कुछ भी है, वह मेरे कारण ही है। इन सबके लिए हम ही उत्तरदायी हैं। संसार की अनुकूलता और प्रतिकूलता से जीवन में कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति तो भगवान के नाम में ही मिलेगी। जीवनभर करने की आदत रखेंगे, तो अन्त में भी भजन की याद रहेगी। संसार जैसा है, उसको स्वीकार करके रहना है।

भगवान का नाम कभी न छूटे। मन में समता रखो। प्रतिकूलता में निराश न होकर देखते रहो। हमारे मन में ही सारा कपट है। यदि संसार भ्रष्ट लगता है, तो उसे बदलने के चक्कर में न पड़ें, अपने मन बदलें।

हमें संसार में जितना चाहिए, उससे अधिक हमारे पास है, पर जीवन में शान्ति नहीं है, सन्तुलन नहीं है, समाधान नहीं है। क्योंकि हमारे मन में कपट है, हमें सन्तोष नहीं है। हम अनावश्यक वस्तु, बातें, चिन्ता और कल्पना में मर रहे हैं। ऐसा इसलिए होता है कि हम अपने जीवन की परम आवश्यकताओं को जानते नहीं है। मनुष्य के जीवन की परम आवश्यकता भगवान ही हैं, दूसरे की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

मेरे जीवन की परम आवश्यकता परमात्मा हैं, ऐसे सोचने से हमारे सारे दुख कम हो जायेंगे। परम आवश्यक वस्तु परमात्मा को पाने के लिए भगवान का नाम-जप करें, यह भगवान की भक्ति है। हम दिन-रात संसार के भिस्ती का पानी पी रहे हैं, इसलिए दुख पा रहे हैं।

रामकृष्ण-भावधारा में आने से हमें समझ आता है कि हमारे जीवन की परम आवश्कता क्या है? हमें ये सोचना चाहिए कि मेरे जीवन में ईश्वर के लिये कोई स्थान है या नहीं। हमारे जीवन में हमें ईश्वर की आवश्यकता का भान नहीं है। इसलिए कष्ट पाते हैं। २४ घण्टे में भगवान की उपासना के लिये हमें समय निकालना चाहिए। यदि भगवान में मन न लगे, तो भगवान से प्रार्थना करें। ❍❍❍

पुस्तक समीक्षा

The Awakening – जागरण

(स्वामी विवेकानन्द के प्रेरणादयी विचार)

प्रकाशक – अद्वैत आश्रम, ५ डेही एंटाली रोड, कोलकाता – ७०००१४, पृष्ठ - १२७, मूल्य - १४०/, ई-मेल – mail@advaitaashrama.org

वर्तमान युग में भोग-लोलुप हमारे मन को अन्तर्मुखी करने के लिये, विशेषकर युवाओं के लिए एक ऐसे आदर्श व्यक्तित्व की आवश्यकता है, जो उनके लिए पथ-प्रदर्शक हो, एक ऐसे व्यक्तित्व को युवाओं के सामने आदर्श के रूप में रखना होगा, जिनमें त्याग, पवित्रता, सरलता, निर्भयता, साहस, उदारता, गरीबों, अनाथों का आश्रयदाता, निष्कपट और स्पष्टवादी हो ऐसे गुणों से विभूषित व्यक्ति नि:संदेह स्वामी विवेकानन्द ही हो सकते हैं। स्वामीजी की वाणी में वह अमोघ शक्ति निहित है, जो युवाओं को सत्य के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करती है।

स्वामी विवेकानन्द जी की इसी अमोघ वाणी को अद्वैत आश्रम, कोलकाता ने संकलित कर तीन भाषाओं (अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला) में 'The Awakening – जागरण' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। यह पुस्तक १२७ पृष्ठों की है।

इस पुस्तक में स्वामीजी के प्रामाणिक ग्रंथों से उनकी वाणियों को लिया गया है – अंग्रेजी में 'Complete Works of Swami Vivekananda (9 Vol.), Awakening ... हिन्दी में 'विवेकानन्द साहित्य' (१० खण्ड) से, बंगला में 'स्वामी विवेकानन्देर वाणी ओ रचना' से वाणी का समावेश किया गया है। इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में विचारों के साथ-साथ उसके अनुरूप रंगीन चित्रों से बहुत सुन्दर सजाया गया है, ताकि पाठकों को मनभावन लगे। पुस्तक के सभी पृष्ठ रंगीन एवं आर्टपेपर में हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी की वाणी का यह एक सुन्दर संकलन है जो युवाओं को देशभक्ति और आध्यात्मिक जीवन के प्रति अवश्य आकर्षित करेगा। यह पुस्तक केवल युवाओं को ही नहीं, बल्कि समाज के सभी आयु वर्ग के लिये लाभकारी सिद्ध होगी।

यदि कोई प्रतिदिन इस पुस्तक से एक-एक वाणी सुबह एवं रात्रि-शयन के पहले पढ़े, तो उस व्यक्ति का जीवन संतुलित और शान्त होगा। यह पुस्तक आज के इस विज्ञान और इलेक्ट्रानिक्स युग में मन को संतुलित बनाये रखने में सहायक सिद्ध होगी।○○○

बच्चों की निवेदिता

प्रकाशक – अद्वैत आश्रम, ५ डेही एंटाली रोड, कोलकाता – ७०००१४, पृष्ठ - ३२, मूल्य - ३५/- ई-मेल – mail@advaitaashrama.org

स्वामी विवेकानन्द के आह्वान पर अपना घर-परिवार छोड़कर, अपनी मातृभूमि को त्याग कर भारत माता की सेवा में अपने आपको पूरी तरह समर्पित कर देनेवाली भगिनी निवेदिता इस युग में नारियों का आदर्श हैं।

स्वामीजी ने कहा था, ''मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि अब मुझे विश्वास हो गया हैं कि भारत के कार्य में तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। भारत के लिये, विशेषकर भारत की स्त्रियों के बीच कार्य करने के लिये – पुरुष की नहीं, नारी की – एक सच्ची सिंहिनी की आवश्यकता है .... तुमको ठीक वैसी ही एक नारी बनाया है, जिसकी आज जरूरत है।'' निवेदिता ने एक विदेशिनी होकर भी भारत की संस्कृति को अपनाकर, भारत भूमि को अपनी मातृभूमि से भी अधिक प्रेम किया था। श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा था, ''निवेदिता यहाँ की है, श्रीरामकृष्ण के भावों तथा सन्देश का प्रचार करने मात्र के लिये वह उस देश में जन्मी थीं।''

कोलकाता अद्वैत आश्रम द्वारा 'बच्चों की निवेदिता' पुस्तिका का प्रकाशन, बच्चों के लिये भगिनी निवेदिता के बारे में जानना तथा भारत माता के प्रति उनके समर्पण के भाव ग्रहण करने के दृष्टिकोण से सराहनीय कार्य है। बंगला भाषा में इस पुस्तिका की रचना श्री मणीन्द्रनाथ सरकार ने तथा चित्रांकन श्री अरूप पाल ने किया। इस पुस्तिका का स्वामी विदेहात्मानन्द जी महाराज ने बंगला भाषा से सरल हिन्दी भाषा में बहुत ही सुन्दर अनुवाद किया है, ताकि बच्चे इसे पढ़कर सहज ही अर्थ और भाव को ग्रहण कर सकें।

इस ३२ पृष्ठ की पुस्तिका के प्रत्येक अध्याय में भगिनी निवेदिता के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का रंगीन चित्रांकन सुन्दर एवं आकर्षक है और जीवन की घटनावली को छोटी-छोटी कविता के माध्यम से भी प्रस्तुत किया गया है, जिससे बच्चे पढ़ने के लिए प्रेरित हों। इस पुस्तिका के अंतिम अध्याय स्मृतियों के प्रकाश में महान वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस ने कहा – 'निवेदिता के त्याग और महाप्राणता की हम लोग कल्पना तक नहीं कर सकते जब देश उन्नत होगा, तभी उनकी महिमा को समझेगा।'' ○○○

समीक्षक – स्वामी कृष्णामृतानन्द

प्राचार्य, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विद्यापीठ, नारायणपुर।

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा १२ जनवरी, २०२१ को 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में मनाया गया, जिसमें निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किये गये –

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ में संस्कृति और पर्यटन राज्यमन्त्री श्री **प्रहलाद सिंह पटेल** जी ने परिदर्शन किया।

पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री **जगदीश संकट**, केन्द्रीय संस्कृति एवं पर्यटन राज्यमंत्री श्री **प्रहलाद सिंह पटेल**, उत्तर प्रदेश के उपमुख्यमंत्री श्री **केशव प्रसाद मौर्य** एवं अन्य माननीय लोगों ने **रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द पैतृक निवास भवन, कोलकाता** जाकर श्रद्धांजलि अर्पित की।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में १२ जनवरी को आश्रम के सत्संग भवन में 'युवा दिवस' मनाया गया, जिसमें आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी, जिन्दल स्टील एंड पावर लिमिटेड, रायपुर के महाप्रबन्धक श्री सुयश शुक्ला और श्रीरामकृष्ण विद्यालय के निदेशक श्री विवेक तिवारी जी ने बच्चों को सम्बोधित किया। कोरोना नियमों का पालन करते हुए सीमित संख्या में श्रीरामकृष्ण विद्यालय के बच्चों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

रामकृष्ण मिशन विद्यालय, कोयम्बटुर द्वारा ऑनलाईन सभा का आयोजन किया गया, जिसमें तमिलनाडू के राज्यपाल **श्री बनवारी लाल पुरोहित** द्वारा भेजे गये वीडियो संदेश का प्रसारण किया गया। केन्द्र द्वारा ऑनलाईन क्विज प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया, जिसमें ३१२४ छात्रों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, हैदराबाद ने विभिन्न विषयों पर पाँच वेबिनार का आयोजन किया, जिसमें केन्द्रीय पशु-पालन राज्यमंत्री श्री **प्रताप चन्द्र सारंगी** एवं बहुत से गणमान्य वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों, कॉरपोरेट जगत के अधिकारियों, युवा प्रतिभागियों एवं अन्य लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर ने युवा सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्री **भूपेश बघेल**, दो राज्य मंत्रियों एवं अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट 'आधुनिक युवाओं के लिये स्वामी विवेकानन्द का संदेश' विषय पर वेबिनार का आयोजन किया। इस वेबिनार में भारत के प्रधानमंत्री श्री **नरेन्द्र मोदी** द्वारा भेजे गये संदेश को पढ़ा गया। केन्द्रीय पशुपालन राज्यमंत्री श्री **प्रताप चन्द्र सारंगी** एवं रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव **स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज** ने रिकार्ड किये गये वीडियो-संदेश द्वारा सम्बोधन किया। पांडीचेरी की राज्यपाल **डॉ. किरण बेदी** एवं अन्य विख्यात् व्यक्तियों ने ऑनलाईन वेबिनार में भाग लिया, जो लगभग ६००० लोगों द्वारा देखा गया।

रामकृष्ण मिशन, शिलाँग ने रक्तदान शिविर का आयोजन किया, जिसमें २८ लोगों ने रक्तदान किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, करीमगंज के द्वारा आयोजित रक्तदान शिविर में २४ लोगों ने रक्तदान किया।

उत्तर प्रदेश के उप-मुख्यमंत्री **श्री केशव प्रसाद मौर्य** ने **रामकृष्ण मठ, गौरहाटी** का २ जनवरी, २०२१ को परिदर्शन किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मनसाद्वीप ने गंगासागर मेले के अवसर पर तीर्थयात्रियों के लिए, मेला-प्रांगण में स्थित आश्रम-शाखा में १२-१५ जनवरी तक निवास एवं भोजन की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त **रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान** चिकित्सालय द्वारा १०-१५ जनवरी तक अनवरत चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की गयीं, जिसमें २००० श्रद्धालुओं की चिकित्सा हुई।